छायावादोत्तर काव्य

(Post Chhayavada Poetry)

जशवंत सिंह

छायावादोत्तर काव्य

छायावादोत्तर काव्य

(Post Chhayavada Poetry)

जशवंत सिंह

भाषा प्रकाशन

नई दिल्ली - 110002

© प्रकाशक

I.S.B.N. : 978-81-323-5573-1

प्रथम संस्करण : 2021

भाषा प्रकाशन

22, प्रकाशदीप बिल्डिंग, अंसारी रोड,
दरियागंज, नई दिल्ली - 110002

द्वारा वर्ल्ड टेक्नोलॉजीज नई दिल्ली के सहयोग से प्रकाशित

प्रस्तावना

छायावादोत्तर युग या शुक्लोत्तर युग (1936 ई. के बाद) का साहित्य अनेक अमूल्य रचनाओं का सागर है, इतना समृद्ध साहित्य किसी भी दूसरी भाषा का नहीं है और न ही किसी अन्य भाषा की परम्परा का साहित्य एवं रचनाएँ अविच्छिन्न प्रवाह के रूप में इतने दीर्घ काल तक रहने पाई हैं, छायावादोत्तर युग या शुक्लोत्तर युग के कवि और उनकी रचनाएँ, छायावादोत्तर या शुक्लोत्तर युग की रचनाएँ और रचनाकार उनके कालक्रम की दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण हैं।

उत्तर-छायावाद काल के कवियों में हरिवंशराय बच्चन, अंचल, नरेन्द्र, आरसीप्रसाद सिंह और भगवतीचरण वर्मा की गिनती की जाती है। इनके अतिरिक्त 'दिनकर' और 'सुमन' आदि के आरंभिक काव्य में भी ये प्रवृत्तियाँ मिलती हैं। ये कवि मूलतः गीतकार हैं। अपनी मांसल, शरीरी वासनाओं और सामाजिक वर्जनाओं के कारण पलायन की अनुभूति को प्रत्यक्षतः व्यक्त करते हुए अभिव्यक्ति को अनलंकृत करने में और नवीनता की आवश्यकता को इन कवियों ने साकार किया है।

उत्तर छायावादी कवि सीधे, सरल और ईमानदारी से अपनी अनुभूति का प्रकाशन करने लगे। इन्होंने जो कुछ अनुभव किया, उसमें से बहुत कुछ छायावादी ढंग का भी था, पर उनके कहने की पद्धति में अंतर स्पष्ट था। इनकी काव्य यात्रा में छायावाद के चिन्ह आवरणहीन होकर और प्रगतिवादी साहित्य की

सूचना दिखाई देती है। आवरण को हटाने के लोभ में वे कहीं-कहीं इतने नंगे हो गये कि रीतिकालीन साहित्य की एक दिशा का आभास होने लगा। इनका आरंभिक काल प्रणय के स्पष्ट, स्थूल और शरीरी रूप को व्यक्त करता है। वैयक्तिक जीवन में प्रणय-तुष्टि ही इनका लक्ष्य रहने के कारण काव्य में अतृप्ति, निराशा तथा क्षोभ का वातावरण तैयार हो गया।

पुस्तक लेखन में कई लिखित व अलिखित स्रोतों से मदद ली गई है; मैं उन सभी विज्ञ लेखकों के प्रति अपना आभार प्रकट करता हूँ। आशा करता हूँ कि पुस्तक पाठकों के लिए उपयोगी होगी।

–लेखक

अनुक्रम

	प्रस्तावना	*v*
1.	**छायावादोत्तर काव्य**	**1**
	छायावादोत्तर युग (1936 ई. के बाद)	1
	पुरानी काव्यधारा	1
	नवीन काव्यधारा	2
2.	**रामधारी सिंह 'दिनकर'**	**3**
	जीवनी	3
3.	**बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'**	**11**
	व्यक्तित्त्व	12
	सत्याग्रह आन्दोलन	13
	कृतियाँ	13
	व्यावहारिक राजनीति	17
	पुरस्कार	19
4.	**हरिवंश राय बच्चन**	**23**
	जीवन	23
	कार्यक्षेत्र	24
	साहित्यिक परिचय	24
	सर्वग्राह्य और सर्वप्रिय	24

आत्मकेन्द्रित कवि 29
रोचक प्रसंग 29
काव्य भाषा की गरिमा 31
5. सुमित्रानन्दन पन्त 50
साहित्य सृजन 51
सुमित्रानंदन पंत 52
साहित्यिक परिचय 54
स्वतंत्रता संग्राम में योगदान 54
काव्य एवं साहित्य की साधना 55
युग प्रवर्तक कवि 55
महाकाव्य 56
काव्य-संग्रह 56
रचनाएँ 57
सुमित्रानन्दन पंत हस्तलिपि 'नक्षत्र' 59
सुमित्रानंदन पंत का प्रकृति चित्रण 64
आलंबन रूप 67
दार्शनिक उद्‌भावना प्रकृति 68
मानवीकरण 68
6. जानकीवल्लभ शास्त्री 71
साहित्य सर्जना 74
7. नरेन्द्र शर्मा 82
रचनायें 82
जीवन परिच 82
साहित्यिक परिचय 83
प्रमुख कृतियाँ 83
8. आरसी प्रसाद सिंह 86
जन्म तथा शिक्षा 87
हिन्दी की प्रकाशित कृतियाँ 87
कथा माला 88
नेताओं पर कटाक्ष 90
राजाश्रय ठुकराना 91

साहित्यकारों के कथन 91
9. भवानी प्रसाद मिश्र 96
जीवन परिचय 96
प्रमुख कृतियाँ 97
कृतियाँ 98
शैली 98
गांधी गीतों के गायक 99
मानववादी कवि 99
सम्मान और पुरस्कार 101
10. अज्ञेय 103
जीवन परिचय 103
प्रमुख कृतियां 104
अज्ञेय रचनावली 105
काव्य 105
अज्ञेय का प्रकृति काव्य 106
11. धर्मवीर भारती 126
जीवन परिचय 126
अलंकरण तथा पुरस्कार 128
12. शमशेर बहादुर सिंह 130
जीवन वृत्त 130
शिक्षा 131
आधुनिक काव्य-बोध 132
रचनाएँ 133
निबन्ध-संग्रह– दोआब 135
गति बिम्ब 145
स्मृति बिम्ब 146
13. सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' 153
जीवन परिचय 153
कार्यक्षेत्र 154
लेखनकार्य 155
प्रकाशित कृतियाँ 155

लिली सूर्यकांत त्रिपाठी निराला 159
14. उदय प्रकाश 167
निजी जीवन 167
प्रकाशित कृतियाँ 172
15. रामदरश मिश्र 177
प्रारंभिक जीवन 177
साहित्यसेवा 178
16. नागार्जुन 182
जीवन-परिचय 182
लेखन-कार्य एवं प्रकाशन 184
प्रकाशित कृतियाँ 185
नागार्जुन पर केंद्रित विशिष्ट साहित्य 188

1

छायावादोत्तर काव्य

छायावादोत्तर युग या शुक्लोत्तर युग (1936 ई. के बाद) का साहित्य अनेक अमूल्य रचनाओं का सागर है, इतना समृद्ध साहित्य किसी भी दूसरी भाषा का नहीं है और न ही किसी अन्य भाषा की परम्परा का साहित्य ,वं रचनाएँ अविच्छिन्न प्रवाह के रूप में इतने दीर्घ काल तक रहने पाई है, छायावादोत्तर युग या शुक्लोत्तर युग के कवि और उनकी रचनाएँ, छायावादोत्तर या शुक्लोत्तर युग की रचनाएँ और रचनाकार उनके कालक्रम की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण हैं।

छायावादोत्तर युग (1936 ई. के बाद)

सन् 1936 ईव से 1947 ईव तक के काल को शुक्लोत्तर युग-छायावादोत्तर युग कहा गया। छायावादोत्तर युग में हिन्दी काव्यधारा बहुमुखी हो जाती है-

पुरानी काव्यधारा

'राष्ट्रीय सांस्कृतिक काव्यधारा' -सियाराम शरण गुप्त, माखन लाल चतुर्वेदी, दिनकर, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', सोहन लाल द्विवेदी, श्याम नारायण पाण्डेय आदि।

उत्तर-छायावादी काव्यधारा- निराला, पंत, महादेवी, जानकी वल्लभ शास्त्री आदि।

नवीन काव्यधारा

वैयक्तिक गीति कविता धारा (प्रेम और मस्ती की काव्य धारा)- बच्चन, नरेंद्र शर्मा, रामेश्वर शुक्ल 'अंचल', भगवती चरण वर्मा, नेपाली, आरसी प्रसाद सिंह आदि।

प्रगतिवादी काव्यधारा - केदारनाथ अग्रवाल, राम विलास शर्मा, नागार्जुन, रांगेय राघव, शिवमंगल सिंह 'सुमन', त्रिलोचन आदि।

प्रयोगवादी काव्य धारा - अज्ञेय, गिरिजा कुमार माथुर, मुक्तिबोध, भवानी प्रसाद मिश्र, शमशेर बहादुर।

नयी कविता काव्य धारा - सिंह, धर्मवीर भारती आदि।

छायावादोत्तर या शुक्लोत्तर युग की मुख्य रचना एवं रचयिता या रचनाकार इस सपेज में नीचे दिये हुए हैं। छायावादोत्तर या शुक्लोत्तर युग के कवि और उनकी रचनाएँ ।

2

रामधारी सिंह 'दिनकर'

रामधारी सिंह 'दिनकर' (23 सितम्बर 1908- 24 अप्रैल 1974) हिन्दी के एक प्रमुख लेखक, कवि व निबन्धकार थे। वे आधुनिक युग के श्रेष्ठ वीर रस के कवि के रूप में स्थापित हैं। दिनकर जी की काव्य प्रतिभा का अनुमान अभिनेता आशुतोष राणा द्वारा दिनकर जी की प्रसिद्ध कविता कृष्ण की चेतावनी को सुनकर लगाया जा सकता है।

'दिनकर' स्वतन्त्रता पूर्व एक विद्रोही कवि के रूप में स्थापित हुए और स्वतन्त्रता के बाद 'राष्ट्रकवि' के नाम से जाने गये। वे छायावादोत्तर कवियों की पहली पीढ़ी के कवि थे। एक ओर उनकी कविताओ में ओज, विद्रोह, आक्रोश और क्रान्ति की पुकार है तो दूसरी ओर कोमल श्रृंगारिक भावनाओं की अभिव्यक्ति है। इन्हीं दो प्रवृत्तिय का चरम उत्कर्ष हमें उनकी कुरुक्षेत्र और उर्वशी नामक कृतियों में मिलता है।

जीवनी

'दिनकर' जी का जन्म 24 सितंबर 1908 को बिहार के बेगूसराय जिले के सिमरिया गाँव में हुआ था। उन्होंने पटना विश्वविद्यालय से इतिहास राजनीति विज्ञान में बीए किया। उन्होंने संस्कृत, बांग्ला, अंग्रेजी और उर्दू का गहन अध्ययन किया था। बी. ए. की परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद वे एक विद्यालय में अध्यापक हो गये। 1934 से 1947 तक बिहार सरकार की सेवा में सब-रजिस्टार और

प्रचार विभाग के उपनिदेशक पदों पर कार्य किया। 1950 से 1952 तक मुजफ्फरपुर कालेज में हिन्दी के विभागाध्यक्ष रहे, भागलपुर विश्वविद्यालय के उपकुलपति के पद पर कार्य किया और उसके बाद भारत सरकार के हिन्दी सलाहकार बने।

उन्हें पद्म विभूषण की उपाधि से भी अलंकृत किया गया। उनकी पुस्तक संस्कृति के चार अध्याय के लिये साहित्य अकादमी पुरस्कार तथा उर्वशी के लिये भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार प्रदान किया गया। अपनी लेखनी के माध्यम से वह सदा अमर रहेंगे।

द्वापर युग की ऐतिहासिक घटना महाभारत पर आधारित उनके प्रबन्ध काव्य कुरुक्षेत्र को विश्व के 100 सर्वश्रेष्ठ काव्यों में 74वाँ स्थान दिया गया।

1947 में देश स्वाधीन हुआ और वह बिहार विश्वविद्यालय में हिन्दी के प्राध्यापक व विभागाध्यक्ष नियुक्त होकर मुजफ्फरपुर पहुँचे। 1952 में जब भारत की प्रथम संसद का निर्माण हुआ, तो उन्हें राज्यसभा का सदस्य चुना गया और वह दिल्ली आ गए। दिनकर 12 वर्ष तक संसद-सदस्य रहे, बाद में उन्हें सन् 1964 से 1965 ई. तक भागलपुर विश्वविद्यालय का कुलपति नियुक्त किया गया। लेकिन अगले ही वर्ष भारत सरकार ने उन्हें 1965 से 1971 ई. तक अपना हिन्दी सलाहकार नियुक्त किया और वह फिर दिल्ली लौट आए। फिर तो ज्वार उमरा और रेणुका, हुंकार, रसवंती और द्वंद्वगीत रचे गए। रेणुका और हुंकार की कुछ रचनाऐं यहाँ-वहाँ प्रकाश में आई और अंग्रेज प्रशासकों को समझते देर न लगी कि वे एक गलत आदमी को अपने तंत्र का अंग बना बैठे हैं और दिनकर की फाइल तैयार होने लगी, बात-बात पर कैफियत तलब होती और चेतावनियाँ मिला करतीं। चार वर्ष में बाईस बार उनका तबादला किया गया।

रामधारी सिंह दिनकर स्वभाव से सौम्य और मृदुभाषी थे, लेकिन जब बात देश के हित-अहित की आती थी तो वह बेबाक टिप्पणी करने से कतराते नहीं थे। रामधारी सिंह दिनकर ने ये तीन पंक्तियां पंडित जवाहरलाल नेहरू के खिलाफ संसद में सुनाई थी, जिससे देश में भूचाल मच गया था। दिलचस्प बात यह है कि राज्यसभा सदस्य के तौर पर दिनकर का चुनाव पंडित नेहरु ने ही किया था, इसके बावजूद नेहरू की नीतियों की मुखालफत करने से वे नहीं चूके।

देखने में देवता सदृश्य लगता है।
बंद कमरे में बैठकर गलत हुक्म लिखता है।
जिस पापी को गुण नहीं गोत्र प्यारा हो
समझो उसी ने हमें मारा है।

1962 में चीन से हार के बाद संसद में दिनकर ने इस कविता का पाठ किया जिससे तत्कालीन प्रधानमंत्री नेहरू का सिर झुक गया था। यह घटना आज भी भारतीय राजनीति के इतिहास की चुनिंदा क्रांतिकारी घटनाओं में से एक है।

रे रोक युद्धिष्ठिर को न यहां जाने दे उनको स्वर्गधीर
फिरा दे हमें गांडीव गदा लौटा दे अर्जुन भीम वीर।

इसी प्रकार एक बार तो उन्होंने भरी राज्यसभा में नेहरू की ओर इशारा करते हए कहा- 'क्या आपने हिंदी को राष्ट्रभाषा इसलिए बनाया है, ताकि सोलह करोड़ हिंदीभाषियों को रोज अपशब्द सुनाए जा सकें?' यह सुनकर नेहरू सहित सभा में बैठे सभी लोगसन्न रह गए थे। किस्सा 20 जून 1962 का है। उस दिन दिनकर राज्यसभा में खड़े हुए और हिंदी के अपमान को लेकर बहुत सख्त स्वर में बोले। उन्होंने कहा-

देश में जब भी हिंदी को लेकर कोई बात होती है, तो देश के नेतागण ही नहीं बल्कि कथित बुद्धिजीवी भी हिंदी वालों को अपशब्द कहे बिना आगे नहीं बढ़ते। पता नहीं इस परिपाटी का आरम्भ किसने् किया है, लेकिन मेरा ख्याल है कि इस परिपाटी को प्रेरणा प्रधानमंत्री से मिली है। पता नहीं, तेरह भाषाओं की क्या किस्मत है कि प्रधानमंत्री ने उनके बारे में कभी कुछ नहीं कहा, किन्तु हिंदी के बारे में उन्होंने आज तक कोई अच्छी बात नहीं कही। मैं और मेरा देश पूछना चाहते हैं कि क्या आपने हिंदी को राष्ट्रभाषा इसलिए बनाया था ताकि सोलह करोड़ हिंदीभाषियों को रोज अपशब्द सुनाएं? क्या आपको पता भी है कि इसका दुष्परिणाम कितना भयावह होगा?

यह सुनकर पूरी सभा सन्न रह गई। ठसाठस भरी सभा में भी गहरा सन्नाटा छा गया। यह मुर्दा-चुप्पी तोड़ते हुए दिनकर ने फिर कहा- 'मैं इस सभा और खासकर प्रधानमंत्री नेहरू से कहना चाहता हूं कि हिंदी की निंदा करना बंद किया जाए। हिंदी की निंदा से इस देश की आत्मा को गहरी चोट पहंचती है।'

प्रमुख कृतियाँ

उन्होंने सामाजिक और आर्थिक समानता और शोषण के खिलाफ कविताओं की रचना की। एक प्रगतिवादी और मानववादी कवि के रूप में उन्होंने

ऐतिहासिक पात्रों और घटनाओं को ओजस्वी और प्रखर शब्दों का तानाबाना दिया। उनकी महान रचनाओं में रश्मिरथी और परशुराम की प्रतीक्षा शामिल है। उर्वशी को छोड़कर दिनकर की अधिकतर रचनाएँ वीर रस से ओतप्रोत हैं। भूषण के बाद उन्हें वीर रस का सर्वश्रेष्ठ कवि माना जाता है।

ज्ञानपीठ से सम्मानित उनकी रचना उर्वशी की कहानी मानवीय प्रेम, वासना और सम्बन्धों के इर्द-गिर्द घूमती है। उर्वशी स्वर्ग परित्यक्ता एक अप्सरा की कहानी है। वहीं, कुरुक्षेत्र, महाभारत के शान्ति-पर्व का कवितारूप है। यह दूसरे विश्वयुद्ध के बाद लिखी गयी रचना है। वहीं सामधेनी की रचना कवि के सामाजिक चिन्तन के अनुरूप हुई है। संस्कृति के चार अध्याय में दिनकरजी ने कहा कि सांस्कृतिक, भाषाई और क्षेत्रीय विविधताओं के बावजूद भारत एक देश है। क्योंकि सारी विविधताओं के बाद भी, हमारी सोच एक जैसी है।

विस्तृत दिनकर साहित्य सूची नीचे दी गयी है–

काव्य

1. बारदोली-विजय संदेश (1928)
2. प्रणभंग (1929)
3. रेणुका (1935)
4. हुंकार (1938)
5. रसवन्ती (1939)
6. द्वंद्वगीत (1940)
7. कुरूक्षेत्र (1946)
8. धूप-छाँह (1947)
9. सामधेनी (1947)
10. बापू (1947)
11. इतिहास के आँसू (1951)
12. धूप और धुआँ (1951)
13. मिर्च का मजा (1951)
14. रश्मिरथी (1952)
15. दिल्ली (1954)
16. नीम के पत्ते (1954)

17. नील कुसुम (1955)
18. सूरज का ब्याह (1955)
19. चक्रवाल (1956)
20. कवि-श्री (1957)
21. सीपी और शंख (1957)
22. नये सुभाषित (1957)
23. लोकप्रिय कवि दिनकर (1960)
24. उर्वशी (1961)
25. परशुराम की प्रतीक्षा (1963)
26. आत्मा की आँखें (1964)
27. कोयला और कवित्व (1964)
28. मृत्ति-तिलक (1964) और
29. दिनकर की सूक्तियाँ (1964)
30. हारे को हरिनाम (1970)
31. संचियता (1973)
32. दिनकर के गीत (1973)
33. रश्मिलोक (1974)
34. उर्वशी तथा अन्य शृंगारिक कविताएँ (1974)

गद्य

1. मिट्टी की ओर 1946
2. चित्तौड़ का साका 1948
3. अर्धनारीश्वर 1952
4. रेती के फूल 1954
5. हमारी सांस्कृतिक एकता 1955
6. भारत की सांस्कृतिक कहानी 1955
7. संस्कृति के चार अध्याय 1956
8. उजली आग 1956
9. देश-विदेश 1957
10. राष्ट्र-भाषा और राष्ट्रीय एकता 1955
11. काव्य की भूमिका 1958

12. पन्त-प्रसाद और मैथिलीशरण 1958
13. वेणुवन 1958
14. धर्म, नैतिकता और विज्ञान 1969
15. वट-पीपल 1961
16. लोकदेव नेहरू 1965
17. शुद्ध कविता की खोज 1966
18. साहित्य-मुखी 1968
19. राष्ट्रभाषा आंदोलन और गांधीजी 1968
20. हे राम! 1968
21. संस्मरण और श्रद्धांजलियाँ 1970
22. भारतीय एकता 1971
23. मेरी यात्राएँ 1971
24. दिनकर की डायरी 1973
25. चेतना की शिला 1973
26. विवाह की मुसीबतें 1973
27. आधुनिक बोध 1973

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कहा था 'दिनकरजी अहिंदीभाषियों के बीच हिन्दी के सभी कवियों में सबसे ज्यादा लोकप्रिय थे और अपनी मातृभाषा से प्रेम करने वालों के प्रतीक थे।' हरिवंश राय बच्चन ने कहा था 'दिनकरजी को एक नहीं, बल्कि गद्य, पद्य, भाषा और हिन्दी-सेवा के लिये अलग-अलग चार ज्ञानपीठ पुरस्कार दिये जाने चाहिये।' रामवृक्ष बेनीपुरी ने कहा था 'दिनकरजी ने देश में क्रान्तिकारी आन्दोलन को स्वर दिया।' नामवर सिंह ने कहा है 'दिनकरजी अपने युग के सचमुच सूर्य थे।' प्रसिद्ध साहित्यकार राजेन्द्र यादव ने कहा था कि दिनकरजी की रचनाओं ने उन्हें बहुत प्रेरित किया। प्रसिद्ध रचनाकार काशीनाथ सिंह के अनुसार 'दिनकरजी राष्ट्रवादी और साम्राज्य-विरोधी कवि थे।'

रचनाओं के कुछ अंश
किस भांति उठूँ इतना ऊपर?
मस्तक कैसे छू पाउँ मैं?
ग्रीवा तक हाथ न जा सकते,
उँगलियाँ न छू सकती ललाट

वामन की पूजा किस प्रकार,
पहुँचे तुम तक मानव विराट?
रे रोक युधिष्ठर को न यहाँ, जाने दे उनको स्वर्ग धीर
पर फिरा हमें गांडीव गदा, लौटा दे अर्जुन भीम वीर --(हिमालय से)
क्षमा शोभती उस भुजंग को, जिसके पास गरल हो,
उसको क्या जो दन्तहीन, विषहीन, विनीत, सरल हो। -- (कुरुक्षेत्र से)
पत्थर सी हों मांसपेशियाँ, लौहदंड भुजबल अभय,
नस-नस में हो लहर आग की, तभी जवानी पाती जय। -- (रश्मिरथी से) हटो व्योम के मेघ पंथ से, स्वर्ग लूटने हम जाते हैं,
दूध-दूध ओ वत्स तुम्हारा, दूध खोजने हम जाते हैं।
सच पूछो तो सर में ही, बसती है दीप्ति विनय की,
सन्धि वचन संपूज्य उसी का, जिसमें शक्ति विजय की।
सहनशीलता, क्षमा, दया को तभी पूजता जग है,
बल का दर्प चमकता उसके पीछे जब जगमग है।'
दो न्याय अगर तो आधा दो, पर इसमें भी यदि बाधा हो,
तो दे दो केवल पाँच ग्राम, रक्खो अपनी धरती तमाम।-- (रश्मिरथी/तृतीय सर्ग/भाग 3)जब नाश मनुज पर छाता है, पहले विवेक मर जाता है। -- (रश्मिरथी/तृतीय सर्ग/भाग 3)।।

वैराग्य छोड़ बाँहों की विभा संभालो चट्टानों की छाती से दूध निकालो है रुकी जहाँ भी धार शिला, तोड़ो पीयूष चन्द्रमाओं का पकड़ निचोड़ो (वीर से)

सम्मान

1999 में भारत सरकार ने रामधारी सिंह दिनकर की स्मृति में डाक टिकट जारी किया।

दिनकरजी को उनकी रचना कुरुक्षेत्र के लिये काशी नागरी प्रचारिणी सभा, उत्तरप्रदेश सरकार और भारत सरकार से सम्मान मिला। संस्कृति के चार अध्याय के लिये उन्हें 1959 में साहित्य अकादमी से सम्मानित किया गया। भारत के प्रथम राष्ट्रपति डॉ राजेंद्र प्रसाद ने उन्हें 1959 में पद्म विभूषण से सम्मानित किया। भागलपुर विश्वविद्यालय के तत्कालीन कुलाधिपति और बिहार के राज्यपाल जाकिर हुसैन, जो बाद में भारत के राष्ट्रपति बने, ने उन्हें डॉक्ट्रेट की

मानद उपाधि से सम्मानित किया। गुरू महाविद्यालय ने उन्हें विद्या वाचस्पति के लिये चुना। 1968 में राजस्थान विद्यापीठ ने उन्हें साहित्य-चूड़ामणि से सम्मानित किया। वर्ष 1972 में काव्य रचना उर्वशी के लिये उन्हें ज्ञानपीठ से सम्मानित किया गया। 1952 में वे राज्यसभा के लिए चुने गये और लगातार तीन बार राज्यसभा के सदस्य रहे।

मरणोपरान्त सम्मा

30 सितम्बर 1987 को उनकी 13वीं पुण्यतिथि पर तत्कालीन राष्ट्रपति जैल सिंह ने उन्हें श्रद्धांजलि दी। 1999 में भारत सरकार ने उनकी स्मृति में डाक टिकट जारी किया। केंद्रीय सूचना और प्रसारण मन्त्री प्रियरंजन दास मुंशी ने उनकी जन्म शताब्दी के अवसर पर रामधारी सिंह दिनकर- व्यक्तित्त्व और कृतित्त्व पुस्तक का विमोचन किया।

उनकी जन्म शताब्दी के अवसर पर बिहार के मुख्यमन्त्री नीतीश कुमार ने उनकी भव्य प्रतिमा का अनावरण किया। कालीकट विश्वविद्यालय में भी इस अवसर पर दो दिवसीय सेमिनार का आयोजन किया गया।

3

बालकृष्ण शर्मा नवीन

बालकृष्ण शर्मा नवीन (1897 - 1960 ई.) हिन्दी कवि थे। वे परम्परा और समकालीनता के कवि हैं। उनकी कविता में स्वच्छन्दतावादी धारा के प्रतिनिधि स्वर के साथ-साथ राष्ट्रीय आंदोलन की चेतना, गांधी दर्शन और संवेदनाओं की झंकृतियां समान ऊर्जा और उठान के साथ सुनी जा सकती हैं। आधुनिक हिन्दी कविता के विकास में उनका स्थान अविस्मरणीय है। वे जीवनभर पत्रकारिता और राष्ट्रीय आंदोलन से जुड़े रहे।

नवीन जी द्विवेदी युग के कवि हैं। इनकी कविताओं में भक्ति-भावना, राष्ट्र-प्रेम तथा विद्रोह का स्वर प्रमुखता से आया है। आपने ब्रजभाषा के प्रभाव से युक्त खड़ी बोली हिन्दी में काव्य रचना की।

उन्हें साहित्य एवं शिक्षा के क्षेत्र में सन् 1960 में पद्मभूषण से सम्मानित किया गया था।

बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' का जन्म 8 दिसम्बर 1897 ई. को मध्य प्रदेश के शुजालपुर जिला शाजापुर के समीप के ग्राम भयाना में हुआ। उनके पिता जमुनादास शर्मा वल्लभ मत के अनुयायी थे और नाथद्वारा के मन्दिरों में पुरोहिती करते थे। मिडिल तक की पढ़ाई नवीन की गृहजनपद के परगना स्कूल में हुई। आगे की पढ़ाई के लिए उन्हें उज्जैन भेजा गया और वहाँ के माधव कॉलेज में प्रविष्ट होकर मैट्रिक की पढ़ाई पूरी की। बालकृष्ण शर्मा माधव कॉलेज, उज्जैन के अपने अध्ययनकाल में ही युगीन साहित्यिक वातावरण और राष्ट्रीय आन्दोलन

की हलचलों में पर्याप्त रुचि लेने लगे थे और उन सबका उनके युवामन पर एक प्रभाव भी दर्ज हो रहा था। कानपुर से गणेशशंकर विद्यार्थी के सम्पादन में प्रकाशित होने वाली पत्रिका 'प्रताप' का नियमित अध्ययन करते थे। इसी दौरान वे माखनलाल चतुर्वेदी और मैथिलीशरण गुप्त के संपर्क में आए। उन्होंने कांग्रेस के अधिवेशन में विधिवत भाग लिया।

हिन्दी साहित्य में प्रगतिशील लेखन के अग्रणी कवि पंडित बालकृष्ण शर्मा ' सन् 1917 ई. में हाई स्कूल की परीक्षा उत्तीर्ण करके बालकृष्ण शर्मा गणेशशंकर विद्यार्थी के आश्रम में कानपुर आकर क्राइस्ट चर्च कॉलेज में पढ़ने लगे।

व्यक्तित्त्व

'नवीन' जी स्वभाव से अत्यन्त उदार, फक्कड़, आवेशी किन्तु मस्त तबियत के आदमी थे। अभिमान और छल से बहुत दूर थे। बचपन के वैष्णव संस्कार उनमें यावज्जीवन बने रहे। जहाँ तक उनके लेखक-कवि व्यक्तित्त्व का प्रश्न है, लेखन की ओर उनकी रुचि इंदौर से ही थी, परन्तु व्यवस्थित लेखन 1917 ई. में गणेशशंकर विद्यार्थी के सम्पर्क में आने के बाद प्रारम्भ हुआ।

गणेशशंकर विद्यार्थी से सम्पर्क का सहज परिणाम था कि वे उस समय के महत्त्वपूर्ण पत्र 'प्रताप' से सम्बद्ध हो गये थे। 'प्रताप' परिवार से उनका सम्बन्ध अन्त तक बना रहा। 1931 ई. में गणेशशंकर विद्यार्थी की मृत्यु के पश्चात् कई वर्षों तक वे 'प्रताप' के प्रधान सम्पादक के रूप में भी कार्य करते रहे। हिन्दी की राष्ट्रीय काव्य धारा को आगे बढ़ाने वाली पत्रिका 'प्रभा' का सम्पादन भी उन्होंने 1921 1923 ई. में किया था। इन पत्रों में लिखी गई उनकी सम्पादकीय टिप्पणियाँ अपनी निर्भीकता, खरेपन और कठोर शैली के लिए स्मरणीय हैं। 'नवीन' अत्यन्त प्रभावशाली और ओजस्वी वक्ता भी थे एवं उनकी लेखन शैली (गद्य-पद्य दोनों ही) पर उनकी अपनी भाषण-कला का बहुत स्पष्ट प्रभाव है। राजनीतिक कार्यकर्ता के समान ही पत्रकार के रूप में भी उन्होंने सारे जीवन कार्य किया।

राजनीतिज्ञ एवं पत्रकार के समानान्तर ही उनके व्यक्तित्त्व का तीसरा भास्वर पक्ष कवि का था। उनके कवि का मूल स्वर मनोरंजक था, जिसे वैष्णव संस्कारों की आध्यात्मिकता एवं राष्ट्रीय जीवन का विद्रोही कण्ठ बराबर अनुकूलित करता रहा। उन्होंने जब लिखना प्रारम्भ किया तब द्विवेदीयुग समाप्त

हो रहा था एवं राष्ट्रीयता के नये आयाम की छाया में स्वच्छन्दतावादी आन्दोलन काव्य में मुखर होने लगा था। परिणामस्वरूप दोनों ही युगों की प्रवृत्तियाँ हमें 'नवीन' में मिल जाती हैं।

सत्याग्रह आन्दोलन

सन् 1920 ई. में बालकृष्ण शर्मा जब बी.ए. फाइनल में पढ़ रहे थे, गांधीजी के सत्याग्रह आन्दोलन के आवाहन पर वे कॉलेज छोड़कर व्यावहारिक राजनीति के क्षेत्र में आ गये। 29 अप्रैल, 1960 ई. को अपने मृत्युपर्यन्त वे देश की व्यावहारिक राजनीति से बराबर सक्रिय रूप से सम्बद्ध रहे। उत्तर प्रदेश के वे वरिष्ठ नेताओं में एक एवं कानपुर के एकछत्र अगुआ थे। भारतीय संविधान निर्मात्री परिषद के सदस्य के रूप में हिन्दी भाषा को राजभाषा के रूप में स्वीकार कराने में उनका बड़ा योगदान रहा है। 1952 ई. से लेकर अपनी मृत्यु तक वे भारतीय संसद के भी सदस्य रहे हैं। सन् 1955 ई. में स्थापित राजभाषा आयोग के सदस्य के रूप में उनका महत्त्वपूर्ण कार्य रहा है।

बालकृष्ण शर्मा नवीन जी का निधन 29 अप्रैल, 1960 ई. में हुआ था।

कृतियाँ

उर्मिला

महावीर प्रसाद द्विवेदी की प्रेरणा ने ही कवियों की चिर-उपेक्षिता 'उर्मिला' का लेखन उनसे 1921 ई. में प्रारम्भ कराया, जो पूरा सन् 1934 ई. में हुआ एवं प्रकाशित सन् 1957 ई. में हुआ। इस काव्य में द्विवेदी युग की इतिवृत्तात्मकता, स्थूल नैतिकता या प्रयोजन (जैसे रामवन गमन को आर्य संस्कृति का प्रसार मानना) स्पष्ट देखे जा सकते हैं, परन्तु मूलतः स्वच्छन्दतावादी गीतितत्त्वप्रधान 'नवीन' का यह प्रयास प्रबन्धत्व की दृष्टि से बहुत सफल नहीं कहा जा सकता। छः सर्गों वाले इस महाकाव्य ग्रन्थ में उर्मिला के जन्म से लेकर लक्ष्मण से पुनर्मिलन तक की कथा कही गयी है, पर वर्णन प्रधान कथा के मार्मिक स्थलों की न तो उन्हें पहचान है और न राम-सीता के विराट व्यक्तित्त्व के आगे लक्ष्मण-उर्मिला बहुत उभर ही सके हैं। उर्मिला का विरह अवश्य कवि की प्रकृति के अनुकूल था और कला की दृष्टि से सबसे सरस एवं प्रौढ़ अंश वही है। यों अत्यन्त विलम्ब से प्रकाशित होने के कारण सम्यक् ऐतिहासिक

परिप्रेक्ष्य में इस ग्रन्थ का मूल्यांकन नहीं हो सका है। यह विलम्ब उनकी सभी कृतियों के प्रकाशन में हुआ है।

कुंकुम

सन् 1930 ई. तक वे यद्यपि कवि रूप में यशस्वी हो चुके थे, परन्तु पहला कविता संग्रह 'कुंकुम' 1936 ई. में प्रकाशित हुआ। इस गीत संग्रह का मूल स्वर यौवन के पहले उद्दाम प्रणयावेग एवं प्रखर राष्ट्रीयता का है। यत्र-तत्र रहस्यात्मक संकेत भी हैं, परन्तु उन्हें तत्कालीन वातावरण का फैशन प्रभाव ही मानना चाहिए। 'कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ' तथा 'आज खड्ग की धार कुण्ठिता है' जैसी प्रसिद्ध कविताएँ 'कुंकुम' में संग्रहीत हैं।

अन्य रचनाएँ

स्वतंत्रता संग्राम का सबसे कठिन एवं व्यस्त समय आ जाने के कारण 'नवीन' बराबर उसी में उलझे रहे। कविताएँ उन्होंने बराबर लिखीं, परन्तु उनकों संकलित कर प्रकाशित कराने की ओर ध्यान नहीं रहा। स्वतंत्रता की प्राप्ति के बाद भी वे संविधान निर्माण जैसे कार्यों में लगे रहे। इस प्रकार एक लम्बे अन्तराल के पश्चात् 1951 ई. में 'रश्मि रेखा' तथा 'अपलक', 1952 ई. में और 'क्वासि' संग्रह प्रकाशित हुआ। विनोबा और भूदान पर लिखी उनकी कतिपय प्रशस्तियाँ एवं उदबोधनों का एक संग्रह 'विनोबा स्तवन' सन् 1955 ई. में प्रकाशित हुआ। इस प्रकाशित सामग्री के अतिरिक्त कुंकुम-क्वासि काल (1930-1949) की अनेक कविताएँ तथा 'प्राणर्पण' नाम से गणेशशंकर विद्यार्थी के बलिदान पर लिखा गया खण्ड काव्य अभी अप्रकाशित ही है। 1949 ई. के बाद भी वे बराबर लिखते एवं पत्रों में प्रकाशित कराते रहे हैं। 'यह शूल युक्त यह अहिआलिंगित जीवन' जैसी श्रेष्ठ आत्मपरक कविताएँ इसी अन्तिम अवस्था में लिखी गयीं हैं। पर ये सब भी असंग्रहीत हैं। 'नवीन' राष्ट्रीय वीर काव्य के प्रणेताओं में मुख्य रहे हैं, परन्तु उनके प्रकाशित संग्रहों में ये कविताएँ बहुत कम आ सकी हैं। उनका गद्य लेखन भी असंकलित रूप में यत्र-तत्र बिखरा हुआ है।

रश्मिरेखा

अब तक प्रकाशित संग्रहों में प्रणय के कवि 'नवीन' का संवेदना और शिल्प की समग्रता की दृष्टि से श्रेष्ठतम एवं प्रतिनिधि संग्रह 'रश्मिरेखा' है। इसमें

'नवीन' की मौजी एवं प्रेमिल अभिव्यक्तियाँ प्रचुर मात्रा में हैं। 'हम अनिकेतन हम अनिकेतन' अत्यन्त निर्लिप्त आत्मस्वीकरण के भाव से वे कह उठते हैं, अब तक इतनी यों ही काटी, अब क्या सीखें नव परिपाटी? कौन बनाये आज घरौंदा, हाथों चुन-चुन कंकड़ माटी। ठाट फकीराना हैं, अपना बाघम्बर सोहे अपने तन।

प्रणय एवं विरह की कितनी ही मादक स्मृतियाँ, कितने ही मनोरम चित्र, कितने ही व्याकुल बेसुध पुकारें एवं विवशता की कितनी ही चीत्कारें 'रश्मिरेखा' में संगृहीत हैं। यह प्रणयी अनिकेतन अत्यन्त उद्दाम भाव से कहता है, कृजे दो कृजे में बुझने वाली प्यास नहीं, बार-बार 'ला!ला!' कहने का समय नहीं, अभ्यास नहीं।

वस्तुतः हिन्दी में हालाबाद के आदि प्रवर्तक 'नवीन' ही हैं तथा भगवतीचरण वर्मा एवं 'बच्चन' ने स्वयं इस बात को स्वीकार किया है।

'अपलक' और 'क्वासि'

'अपलक' और 'क्वासि' में संकलित कविताओं में यद्यपि कविताओं का रचनाकाल वही है, जो 'रश्मिरेखा' की कविताओं का है। पर इनमें जो कविताएँ संकलित हैं, उनमें प्रणय का वेग दर्शन एवं भक्ति भावना से प्रतिहत होता लगता है। 'आध्यात्मिकता' का स्वर छायावाद के बहुत से आलोचकों को भी भ्रम और विवाद में डालता रहा है, परन्तु शिल्प के जिस लाक्षणिक वैचित्र्य के माध्यम से वह स्वर व्यक्त हुआ है, उसने् उन कविताओं को अनगढ़ नहीं होने दिया। परन्तु 'नवीन' का छायावादकाल में ही लिखा गया यह अध्यात्म निवेदन बहुत कुछ स्थूल एवं इतिवृत्तात्मक पदावली में व्यक्त हुआ है। छायावाद के शिल्प को वे मन से नहीं स्वीकार करते, पर रहस्य या अध्यात्म की पदावली उन पर हावी प्रतीत होती है। परन्तु इन संकलनों में जहाँ उनका मस्त एवं प्रणयी व्यक्तित्त्व सहज ही व्यक्त हुआ है, वहाँ काव्य नितान्त रसनिर्भर हो सका है। 'हम हैं मस्त फकीर' ('अपलक') 'तुम युग-युग की पहचानी सी' ('क्वासि'), 'मान छोड़ो' (क्वासि), 'सुन लो प्रिय मधुर गान' ('अपलक'), ऐसी ही कविताएँ हैं। आध्यात्मिक अन्योक्ति की दृष्टि से 'डोलेवालों' ('क्वासि') उनकी श्रेष्ठतम कविता है।

पुरस्कार

बालकृष्ण नवीन को साहित्य एवं शिक्षा के क्षेत्र में सन् 1960 में पद्म भूषण से सम्मानित किया गया था।

साहित्य रचना

शर्माजी के साहित्यिक जीवन की पहली रचना 'सन्तू' नामक एक कहानी थी। इसे उन्होंने छपने के लिए सरस्वती में भेजा था। इसके बाद वे कविता की तरफ मुड़े। 'जीव ईश्वर वार्तालाप' शीर्षक की कविता से हिन्दी जगत इन्हें पहचानने लगा। इन सबसे अलग वे स्वतंत्रता आंदोलन में भी भाग लेने लगे। महात्मा गांधी के असहयोग आंदोलन में भाग लेने के लिए अपनी पढ़ाई छोड़कर राजनीति के क्षेत्र में आ गए। यहीं से नवीनजी की जेल यात्राओं का अनवरत सिलसिला शुरू हुआ, जो देश की आजादी तक निरंतर चलता रहा। असहयोग आंदोलन के बाद नमक सत्याग्रह, फिर व्यक्तिगत सत्याग्रह और अन्त में 1942 का ऐतिहासिक भारत छोड़ो आंदोलन। इस प्रकार कुल छह जेल यात्राओं में जिन्दगी के नौ साल नवीनजी ने जेल में बिताये। शर्माजी की सर्वश्रेष्ठ रचनाएं इन्हीं जेल यात्राओं के दौरान रची गई।

इनके महत्वपूर्ण काव्यग्रंथ हैं- कुमकुम, रश्मिरेखा, अपलक, क्वासि, उर्मिला, विनोबा स्तवन, प्राणार्पण तथा हम विषपायी जन्म के। पहली जेलयात्रा के दौरान उर्मिला की शुरूआत की। उर्मिला महाकाव्य के प्रणयन में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी की प्रेरणा की झलक साफ देखी जा सकती है। छह सर्गों वाली इस कृति में यद्यपि उर्मिला के जन्म से लेकर लक्ष्मण से पुर्नमिलन तक की कथा कही गई है, लेकिन अन्य पक्षों के बजाय उर्मिला का विरह-वर्णन कला की दृष्टि से सबसे सरस बन पड़ा है।

देवि उर्मिले तेरी अकथित गाथा गाता हूँ मैं,
किंवा तव चरिताम्बुधि-भजन के हित आता हूँ मैं।
अति अगम्य बलवती लहर है थाह न पाता हूँ मैं।
हृदय शिला पर तव चरणों को देवि बिठाता हूँ मैं।

इसके अलावा उनकी अधिकांश कविताएं भी कारागार के शून्य कक्ष में ही लिखी गई हैं। जेल से बाहर नवीनजी काव्य की दृष्टि से कुछ विशेष नहीं लिख पाए। शिमला-समझौते में निराशा का अवतरण, मुसलमान भाइयों की खिदमत में, तुम्हारे उपवास की चिन्ता, 'एक ही थैली के चट्टे-बट्टे' आदि शीर्षकों से जो असंख्य अग्रलेख और निबंध, जेल से बाहर के अपने जीवन में नवीन ने लिखे, वे 'प्रताप' और 'प्रभा' में प्रकाशित होकर सतत् चर्चाओं के केन्द्र में रहे।

बालकृष्ण शर्मा एक अच्छे गद्यकार के साथ जागरूक पत्रकार थे। उन्होंने विद्यार्थीजी की ओजपूर्ण भावात्मक गद्य-शैली को अपना पाथे, बनाया था। विद्यार्थीजी के जीवनकाल में ही प्रताप और प्रभा के सम्पादन का स्वतंत्र दायित्व संभाल कर न सिर्फ उन्होंने अपनी पत्रकारिता संबंधी भाषाओं का परिचय दिया, बल्कि प्रभा के झण्डा अंक के द्वारा हिन्दी की राष्ट्रीय पत्रकारिता में एक गौरवपूर्ण पृष्ठ भी जोड़ा।

व्यावहारिक राजनीति

सन् 1920 ई. में बालकृष्ण शर्मा जब बी.ए. फाइनल में पढ़ रहे थे, गांधीजी के सत्याग्रह आन्दोलन के आवाहन पर वे कॉलेज छोड़कर व्यावहारिक राजनीति के क्षेत्र में आ गये। 29 अप्रैल, 1960 ई. को अपने मृत्युपर्यन्त वे देश की व्यावहारिक राजनीति से बराबर सक्रिय रूप से सम्बद्ध रहे। उत्तर प्रदेश के वे वरिष्ठ नेताओं में एक एवं कानपुर के एकछत्र अगुआ थे। भारतीय संविधान निर्मात्री परिषद के सदस्य के रूप में हिन्दी भाषा को राजभाषा के रूप में स्वीकार कराने में उनका बड़ा योगदान रहा है। 1952 ई. से लेकर अपनी मृत्यु तक वे भारतीय संसद के भी सदस्य रहे हैं। सन् 1955 ई. में स्थापित राजभाषा आयोग के सदस्य के रूप में उनका महत्त्वपूर्ण कार्य रहा है।

व्यक्तित्त्व

'नवीन' जी स्वभाव से अत्यन्त उदार, फक्कड़, आवेशी किन्तु मस्त तबियत के आदमी थे। अभिमान और छल से बहुत दूर थे। बचपन के वैष्णव संस्कार उनमें यावज्जीवन बने रहे। जहाँ तक उनके लेखक-कवि व्यक्तित्त्व का प्रश्न है, लेखन की ओर उनकी रुचि इंदौर से ही थी, परन्तु व्यवस्थित लेखन 1917 ई. में गणेशशंकर विद्यार्थी के सम्पर्क में आने के बाद प्रारम्भ हुआ।

पत्रकार

गणेशशंकर विद्यार्थी से सम्पर्क का सहज परिणाम था कि वे उस समय के महत्त्वपूर्ण पत्र 'प्रताप' से सम्बद्ध हो गये थे। 'प्रताप' परिवार से उनका सम्बन्ध अन्त तक बना रहा। 1931 ई. में गणेशशंकर विद्यार्थी की मृत्यु के पश्चात् कई वर्षों तक वे 'प्रताप' के प्रधान सम्पादक के रूप में भी कार्य करते रहे। हिन्दी की राष्ट्रीय काव्य धारा को आगे बढ़ाने वाली पत्रिका 'प्रभा' का सम्पादन भी उन्होंने 1921 - 1923 ई. में किया था। इन पत्रों में लिखी गई

उनकी सम्पादकीय टिप्पणियाँ अपनी निर्भीकता, खरेपन और कठोर शैली के लिए स्मरणीय हैं। 'नवीन' अत्यन्त प्रभावशाली और ओजस्वी वक्ता भी थे एवं उनकी लेखन शैली (गद्य-पद्य दोनों ही) पर उनकी अपनी भाषण-कला का बहुत स्पष्ट प्रभाव है। राजनीतिक कार्यकर्ता के समान ही पत्रकार के रूप में भी उन्होंने सारे जीवन कार्य किया।

राजनीतिज्ञ एवं पत्रकार के समानान्तर ही उनके व्यक्तित्त्व का तीसरा भास्वर पक्ष कवि का था। उनके कवि का मूल स्वर मनोरंजक था, जिसे वैष्णव संस्कारों की आध्यात्मिकता एवं राष्ट्रीय जीवन का विद्रोही कण्ठ बराबर अनुकूलित करता रहा। उन्होंने जब लिखना प्रारम्भ किया तब द्विवेदी युग समाप्त हो रहा था एवं राष्ट्रीयता के नये आयाम की छाया में स्वच्छन्दतावादी आन्दोलन काव्य में मुखर होने लगा था। परिणामस्वरूप दोनों ही युगों की प्रवृत्तियाँ हमें 'नवीन' में मिल जाती हैं।

भाषा

ब्रजभाषा 'नवीन' की मातृभाषा थी। उनके प्रत्येक ग्रन्थ में ब्रजभाषा के भी कतिपय गीत या छन्द मिलते हैं। ब्रजभाषा में 'नवीन' भाव-संवेदना की अभिव्यक्ति का प्रयास कर उन्होंने ब्रजभाषा के आधुनिक साहित्य को समृद्ध किया है। उर्मिला का एक सम्पूर्ण सर्ग ही ब्रजभाषा में है। परन्तु उनका ब्रजभाषा मोह एवं खड़ी बोली के परिनिष्ठित प्रयोगों के मध्य आ प्रकट होता है। तब पाठक के लिए रसभंग की स्थिति पैदा हो जाती है। ब्रजभाषा के क्रियापदों या शब्दों जानूँ हूँ, सोचूँ हूँ, नैक, लागी, नचीं, उमड़ाय दिया आदि का निखरी तत्सम प्रधान खड़ीबोली में प्रयोग अत्यन्त अकुशल ढंग से हुआ है। वस्त्र के लिए 'बस्तर' जैसे प्रयोग भी बहुधा खटकते हैं। वस्तुतः आधुनिक काल के श्रेष्ठ कवियों में 'नवीन' से अधिक भाषा के भ्रष्ट प्रयोग मिल ही नहीं सकते। लगता है यह भी उनकी भाषणकला का ही प्रभाव था। सम्भवतः राजनीतिक व्यस्तता भी इस परिष्कारहीनता के मूल में थी। संस्कृत के भारी भरकम अप्रचलित एवं दुरूह शब्दों को लाने की प्रवृत्ति उनकी बराबर बढ़ती गयी है।

दुरूह अकाव्यात्मक शब्दावली

सन् 1950-51 ई. के बाद की कविताओं में अध्यात्म मोह के साथ-साथ दुरूह अकाव्यात्मक शब्दावली (शब्द और अर्थ के वक्र कविव्यापारशाली

सहभाव से विच्छिन्न) का उनका आग्रह उनके काव्य के रसास्वादन में बराबर बाधक बनता गया है। लगता है शैली जीतती गयी है और वे हारते गये हैं।

काव्य

हिन्दी काव्य धारा की द्विवेदी युग के पश्चात् जो परिणति छायावाद से हुई है, 'नवीन' उसके अंतर्गत नहीं आते। राजनीति के कठोर यथार्थ में उनके लिए शायद यह सम्भव नहीं था कि वैसी भावुकता, तरलता, अतीन्द्रियता एवं कल्पना के पंख वे बाँधते, परन्तु इस बात को याद रखना होगा कि उनका काव्य भी स्वच्छन्दतावादी (मनोरंजक) आन्दोलन का ही प्रकाश है। 'नवीन' मैथिलीशरण गुप्त आदि का काव्य छायावाद के समानान्तर संचरण करता हुआ आगे चलकर बच्चन, अंचल, नरेन्द्र शर्मा, दिनकर आदि के काव्य में परिणत होता है। काव्यधारा के इस प्रवाह की ओर हिन्दी आलोचकों ने अभी तक उपेक्षा का ही भाव रखा है। अस्तु, 'नवीन' के काव्य में एक ओर राष्ट्रीय संग्राम की कठोर जीवनाभूतियाँ एवं जागरण के स्वर व्यंजित हुए हैं और दूसरे सहज मानवीय स्तर (योद्धा से अलग) पर प्रेम-विरह की राग-संवेदनाएँ प्रकाश पा सकी हैं। इसी क्रम में हालावादी काव्य की भी सृष्टि हुई है। इस प्रकार छायावाद के समानान्तर बहने वाली वीर-शृंगार धारा के वे अग्रणी कवि रहे हैं। कवि के अतिरिक्त गद्यलेखक के रूप में भी 'प्रताप' जैसे पत्र के माध्यम से उन्होंने ओज-गुणप्रधान एक शैली के निर्माण में अपना योग दिया है।

पुरस्कार

मृत्यु

बालकृष्ण शर्मा नवीन जी का निधन 29 अप्रैल, 1960 ई. में हुआ था।

कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ, जिससे उथल-पुथल मच जाये! इस अमर 'विप्लव गीत' के रचनाकार पंडित बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' का जन्म 8 दिसंबर, 1897 को मध्य प्रदेश के ग्वालियर राज्य के शाजापुर परगने के भयाना गांव में एक अत्यंत विपन्न वैष्णव ब्राह्मण परिवार में हुआ.

पिता जमनालाल शर्मा भले ही वैष्णवों के प्रसिद्ध तीर्थ नाथद्वारा में रहते थे, अभाव व विपन्नता ने इस परिवार को ऐसा घेर रखा था कि मजबूर माता को बालकृष्ण को गायों के बाड़े में जन्म देना पड़ा। बाद में वे

आस-पास के किसी समृद्ध परिवार में पिसाई-कुटाई करके 'कुछ' लातीं तो पेट भरता।

तन ढकने के लिए साल में दो धोतियां भी नहीं जुड़तीं और पैबंदों से काम चलाना पड़ता। ऐसे में बेटे की पढ़ाई-लिखाई की व्यवस्था कैसे करतीं? फिर भी बालकृष्ण ने किसी तरह पहले शाजापुर से मिडिल स्कूल की, फिर उज्जैन जाकर हाईस्कूल की परीक्षा पास की।

भीषण गरीबी के बावजूद उनके तन-मन भारतमाता को स्वतंत्र कराने की उमंग से ऐसे सराबोर थे कि किसी अखबार में दिसंबर, 1916 में लखनऊ में कांग्रेस का महाधिवेशन होने की खबर पढ़ी तो जैसे-तैसे कुछ पैसे जुटाये और कंधे पर कंबल व हाथ में लाठी लेकर नंगे पैर ही उसमें शामिल होने चल पड़े. हालांकि तब तक उन्होंने लखनऊ का नाम भर ही सुना था और उसका 'इतिहास-भूगोल' उन्हें कतई पता नहीं था।

महाधिवेशन में उन्हें अपने चहेते नायकों लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक और गणेश शंकर विद्यार्थी के अलावा माखनलाल चतुर्वेदी व मैथिलीशरण गुप्त जैसी विभूतियों से परिचय व उनका सान्निध्य प्राप्त हुआ।

वहां से लौटे तो उज्जैन से अपनी अगली परीक्षा उत्तीर्ण की, फिर गणेशशंकर विद्यार्थी से बात करके कानपुर चले गये, जहां विद्यार्थी जी ने उन्हें क्राइस्ट चर्च कॉलेज में प्रवेश तो दिलाया ही, बीस रुपये महीने का एक ट्यूशन भी दिलाया. ताकि उनकी गुजर-बसर में कोई बाधा न आये।

बाद में राजनीति, इतिहास, दर्शन, धर्म, संस्कृत, अंग्रेजी और हिन्दी साहित्य के गम्भीर अध्ययन में रत होने के साथ वे 'प्रताप' के संपादन में भी विद्यार्थी जी का हाथ बंटाने लगे। उनकी मेहनत रंग लाई और थोड़े ही दिनों में उन्होंने राजनीतिक व साहित्यिक क्षेत्र में महत्वपूर्ण स्थान बना लिया और कवि के रूप में खासे प्रसिद्ध हो गये।

उनकी 'कवि, कुछ ऐसी तान सुनाओ' पंक्ति तो लोगों का कंठहार बन गयी। कहते हैं कि वे जितने अच्छे कवि थे, उतने ही अच्छे काव्यपाठी और उतने ही ओजस्वी वक्ता भी। बाद में महात्मा गांधी ने सत्याग्रह आंदोलन शुरू किया तो उसमें शामिल होने के लिए उन्होंने कॉलेज छोड़ दिया।

संयुक्त प्रांत के सत्याग्रहियों के पहले ही जत्थे में उनका नाम था, जिसके पुरस्कारस्वरूप गोरी सरकार ने 1921 में उन्हें डेढ़ वर्ष की सजा दी। यह सजा उन्होंने अदल-बदल कर कई जेलों में काटी, लेकिन अभी तो यह इब्तिदा थी।

आगे चलकर छह बार सुनायी गयी और सजाओं में उन्हें घोर यातनाओं के बीच अपने जीवन के नौ साल जेलों में बिताने पड़े। इनमें ज्यादातर सजाओं का कारण उनके वे लेख अथवा भाषण थे, जो उन्होंने गोरे हुक्मरानों के विरोध में लिखे या दिये।

लंबे जेल जीवन में ही वे आचार्य जेबी कृपालानी, राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन और जवाहरलाल नेहरू जैसे भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के बड़े नेताओं के संपर्क में आये। वहीं उन्होंने पंडित नेहरू से भूमिति व अंग्रेजी पढ़ी और उनको कवायद करना सिखाया। इस तरह दोनों अलग-अलग मामलों में एक दूजे के गुरु हो गये।

'नवीन' की ज्यादातर कृतियां और कविताएं जेलों में ही रची गयीं क्योंकि जेल से बाहर आकर तो वे राजनीतिक हलचलों व 'प्रताप' के संपादन से जुड़े कामों में व्यस्त हो जाते थे।

1921 से 1923 तक उन्होंने राष्ट्रीय विचारों पर आधारित 'प्रभा' नामक एक पत्रिका का भी संपादन किया, जबकि कानपुर के सांप्रदायिक उपद्रवों में विद्यार्थी जी की बलि के कई साल बाद तक 'प्रताप' के प्रधान संपादक रहे। विद्यार्थी जी की स्मृति में उन्होंने 'प्राणार्पण' शीर्षक खंड काव्य भी रचा।

महात्मा गांधी के प्रति अपार श्रद्धा रखने के कारण कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' उन्हें 'गांधी जी का मजनूं' कहा करते थे, जबकि विद्यार्थी जी का स्मारक बनाने के लिए गठित निधिसंग्रह समिति का सारा जिम्मा भी उन्हीं के कंधों पर था।

गांधी जी ने 'हरिजन सेवक' में लोगों से इस निधि में रकम भेजने का अनुरोध करते हुए लिखा था-'जिस सम्पदा का संरक्षक बालकृष्ण हो, उसके बारे में सोच-विचार क्या!' इसी बात से पता चलता है कि गांधी उन पर कितना विश्वास करते थे।

नवीन को छायावाद के समानांतर बहने वाली उस काव्यधारा का प्रतिनिधि कवि माना जाता है, जिसमें वीरता, प्रेम व शृंगार के अतिरिक्त राष्ट्रीयता व मानवीयता के स्वर प्रवाहित हैं। उनकी कृतियों में 'उर्मिला', 'कुमकुम', 'रश्मिरेखा', 'अपलक', 'क्वासि' और 'विनोबास्तवन' महत्वपूर्ण हैं।

लेकिन उनके सिलसिले में साहित्य सृजन से ज्यादा महत्वपूर्ण यह है कि उन्होंने साहित्य व स्वतंत्रता की एक साथ, अद्वितीय व बहुमुखी सेवा करते हुए न सिर्फ अपना घर-बार बल्कि पढ़ाई-लिखाई वगैरह भी होम कर डाली।

स्वतंत्रता संघर्ष के दौरान वे कई बार उत्तर प्रदेश कांग्रेस समिति के अध्यक्ष व महामंत्री बने, जबकि आजादी के बाद संविधान परिषद के सदस्य मनोनीत हुए और पहले आम चुनाव में कानपुर से लोकसभा के लिए निर्वाचित हुए। 1955 में वे संसद द्वारा नियोजित भाषा आयोग के वरिष्ठ सदस्य बने, तो 1957 व 1960 में राज्यसभा सदस्य चुने गये।

कहा जाता है कि वे जन्मजात विद्रोही थे। एक बार नेहरू ने उन्हें अपने मंत्रिमंडल में शामिल होने को आमंत्रण दिया तो अपने विद्रोही स्वभाव के कारण ही उन्होंने उसे स्वीकार नहीं किया। 1954 में उन्हें कांग्रेस से अलग कर दिया गया, तो भी वे नहीं झुके और पांच महीने बाद खुद नेहरू ने उनकी पार्टी में वापसी करायी।

वरिष्ठ कवि भवानीप्रसाद मिश्र ने लिखा है कि यों तो नवीन जी के आसपास हंसी और उल्लास की बरसात होती रहती थी, लेकिन कभी गुस्से में आ जाते तो उनका तराशा हुआ कसरती शरीर कांपने लगता, चेहरा तमतमा जाता और आंखें जल उठतीं।

जीवन भर आर्थिक चुनौतियां सहने के बावजूद उनके मन में इसे लेकर कोई ग्रंथि नहीं थी। 'प्रताप' में उन्हें हर महीने 500 रुपये मिलने लगे तो उन्होंने इसका ज्यादातर अंश असहाय परिवारों के भरण-पोषण के लिए खर्च करना आरम्भ कर दिया।

उन्हें अपने बिना घर-बार के होने और गरीब होने पर गर्व-सा था। कोई उनसे भविष्य के लिए कुछ बचाकर रखने की बात करता तो कहते-मेरा शरीर भिक्षा के अन्न से पोषित है इसलिए मुझे संग्रह करने का कतई कोई अधिकार नहीं है।

लेकिन 1955 के बाद के उनके कई साल भयावह कष्ट में बीते। इन दौरान उन पर पक्षाघात के तीन आक्रमण हुए। ऊपर से हृदयरोग, रक्तचाप और फेफड़े का कैंसर. फिर तो उनकी वाणी भी चली गयी और स्मृति भी। कई दिन अचेत रहने के बाद 29 अप्रैल, 1960 को तीसरे पहर उन्होंने अंतिम सांस ली तो हिन्दी ने अपना उथल पुथल मचाने वाला सबसे ओजस्वी कवि खो दिया।

4

हरिवंश राय बच्चन

हरिवंश राय बच्चन (27 नवम्बर 1907 - 18 जनवरी 2003) हिन्दी भाषा के एक कवि और लेखक थे। इलाहाबाद के प्रवर्तक बच्चन हिन्दी कविता के उत्तर छायावाद काल के प्रमुख कवियों में से एक हैं। उनकी सबसे प्रसिद्ध कृति मधुशाला है। भारतीय फिल्म उद्योग के प्रख्यात अभिनेता अमिताभ बच्चन उनके सुपुत्र हैं।

उन्होंने इलाहाबाद विश्वविद्यालय में अंग्रेजी का अध्यापन किया। बाद में भारत सरकार के विदेश मंत्रालय में हिन्दी विशेषज्ञ रहे। अनन्तर राज्य सभा के मनोनीत सदस्य। बच्चन जी की गिनती हिन्दी के सर्वाधिक लोकप्रिय कवियों में होती है।

जीवन

बच्चन का जन्म 27 नवम्बर 1907 को इलाहाबाद में एक कायस्थ परिवार में हुआ था। इनके पिता का नाम प्रताप नारायण श्रीवास्तव तथा माता का नाम सरस्वती देवी था। इनको बाल्यकाल में 'बच्चन' कहा जाता था जिसका शाब्दिक अर्थ 'बच्चा' या 'संतान' होता है। बाद में ये हरिवंश राय बच्चन के नाम से मशहूर हुए। इन्होंने कायस्थ पाठशाला में पहले उर्दू और फिर हिंदी की शिक्षा प्राप्त की। उन्होंने इलाहाबाद विश्वविद्यालय से अंग्रेजी में एम.ए. और कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय से अंग्रेजी साहित्य के विख्यात कवि डब्लू.बी. यीट्स की

कविताओं पर शोध कर च्भ्क्(पी.एच.डी) पूरी की थी। जो राफी प्रशंसित हुआ 1926 में 19 वर्ष की उम्र में उनका विवाह श्यामा बच्चन से हुआ जो उस समय 14 वर्ष की थीं। लेकिन 1936 में श्यामा की टीबी के कारण मृत्यु हो गई। पाँच साल बाद 1941 में बच्चन ने एक पंजाबन तेजी सूरी से विवाह किया जो रंगमंच तथा गायन से जुड़ी हुई थीं। इसी समय उन्होंने 'नीड़ का निर्माण फिर' जैसे कविताओं की रचना की।

कार्यक्षेत्र

हरिवंश राय बच्चन अनेक वर्षों तक इलाहाबाद विश्वविद्यालय के अंग्रेजी विभाग में प्राध्यापक रहे। कुछ समय के लिए हरिवंश राय बच्चन आकाशवाणी के साहित्यिक कार्यक्रमों से सम्बद्ध रहे। फिर 1955 ई. में वह विदेश मंत्रालय में हिन्दी विशेषज्ञ होकर दिल्ली चले गये।

साहित्यिक परिचय

बच्चन जी अपने महानायक पुत्र अमिताभ व महाकवि सुमित्रनंदन पंत के साथ

श्बच्चन' की कविता के साहित्यिक महत्त्व के बारे में अनेक मत हैं। 'बच्चन' के काव्य की विलक्षणता उनकी लोकप्रियता है। यह निःसंकोच कहा जा सकता है कि आज भी हिन्दी के ही नहीं, सारे भारत के सर्वाधिक लोकप्रिय कवियों में 'बच्चन' का स्थान सुरक्षित है। इतने विस्तृत और विराट श्रोतावर्ग का विरले ही कवि दावा कर सकते हैं।

सर्वग्राह्य और सर्वप्रिय

'बच्चन' की कविता इतनी सर्वग्राह्य और सर्वप्रिय है क्योंकि 'बच्चन' की लोकप्रियता मात्र पाठकों के स्वीकरण पर ही आधारित नहीं थी। जो कुछ मिला वह उन्हें अत्यन्त रुचिकर जान पड़ा। वे छायावाद के अतिशय सुकुमार्य और माधुर्य से, उसकी अतीन्द्रिय और अति वैयक्तिक सूक्ष्मता से, उसकी लक्षणात्मक अभिव्यंजना शैली से उकता गये थे। उर्दू की गजलों में चमक और लचक थी। दिल पर असर करने की ताकत थी, वह सहजता और संवेदना थी, जो पाठक या श्रोता के मुँह से बरबस यह कहलवा सकती थी कि, मैंने पाया यह कि गोया वह भी मेरे दिल में है। मगर हिन्दी कविता जनमानस और जन रुचि से बहुत

दूर थी। 'बच्चन' ने उस समय (1935 से 1940 ई. के व्यापक खिन्नता और अवसाद के युग में) मध्यवर्ग के विक्षुब्ध, वेदनाग्रस्त मन को वाणी का वरदान दिया। उन्होंने सीधी, सादी, जीवन्त भाषा और सर्वग्राह्य, गेय शैली में, छायावाद की लाक्षणिक वक्रता की जगह संवेदनासिक्त अभिधा के माध्यम से, अपनी बात कहना आरम्भ किया और हिन्दी काव्य रसिक सहसा चौंक पड़ा, क्योंकि उसने् पाया यह कि वह भी उसके दिल में है। 'बच्चन' ने प्राप्त करने के उद्देश्य से चेष्टा करके यह राह ढूँढ निकाली और अपनायी हो, यह बात नहीं है, वे अनायास ही इस राह पर आ गये। उन्होंने अनुभूति से प्रेरणा पायी थी, अनुभूति को ही काव्यात्मक अभिव्यक्ति देना उन्होंने अपना ध्येय बनाया।

हरिवंश राय बच्चन

पहला काव्य संग्रह

एक प्रकाशन 'तेरा हार' पहले भी प्रकाशित हो चुका था, पर 'बच्चन' का पहला काव्य संग्रह 1935 ई. में प्रकाशित 'मधुशाला' से ही माना जाता है। इसके प्रकाशन के साथ ही 'बच्चन' का नाम एक गगनभेदी रॉकेट की तरह तेजी से उठकर साहित्य जगत पर छा गया। 'मधुबाला', 'मधुशाला' और 'मधुकलश'–एक के बाद एक, ये तीनों संग्रह शीघ्र ही सामने आ गये हिन्दी में जिसे 'हालावाद' कहा गया है। ये उस काव्य पद्धति के धर्म ग्रन्थ हैं। उस काव्य पद्धति के संस्थापक ही उसके एकमात्र सफल साधक भी हुए, क्योंकि जहाँ 'बच्चन' की पैरोडी करना आसान है, वहीं उनका सच्चे अर्थ में, अनुकरण असम्भव है। अपनी सारी सहज सार्वजनीनता के बावजूद 'बच्चन' की कविता नितान्त वैयक्तिक, आत्म–स्फूर्त और आत्मकेन्द्रित है।

प्रेरणा

'बच्चन' ने इस 'हालावाद' के द्वारा व्यक्ति जीवन की सारी नीरसताओं को स्वीकार करते हुए भी उससे मुँह मोड़ने के बजाय उसका उपयोग करने की, उसकी सारी बुराइयों और कमियों के बावजूद जो कुछ मधुर और आनन्दपूर्ण होने के कारण ग्राह्य है, उसे अपनाने की प्रेरणा दी। उर्दू कवियों ने 'वाइज' और 'बजा', मस्जिद और मजहब, कयामत और उकवा की परवाह न करके दुनिया–ए–रंगों–बू को निकटता से, बार–बार देखने, उसका आस्वादन करने का

आमंत्रण दिया है। ख्याम ने वर्तमान क्षण को जानने, मानने, अपनाने और भली प्रकार ईस्तेमाल करने की सीख दी है, और 'बच्चन' के 'हालावाद' का जीवन-दर्शन भी यही है। यह पलायनवाद नहीं है, क्योंकि इसमें वास्तविकता का अस्वीकरण नहीं है, न उससे भागने की परिकल्पना है, प्रत्युत्त वास्तविकता की शुष्कता को अपनी मनस्तरंग से सींचकर हरी-भरी बना देने की सशक्त प्रेरणा है। यह सत्य है कि 'बच्चन' की इन कविताओं में रूमानियत और कसक है, पर हालावाद गम गलत करने का निमंत्रण है, गम से घबराकर खुदकशी करने का नहीं।

सर्वोत्कृष्ट काव्योपलब्धि

हरिवंशराय बच्चन, सुमित्रनंदन पंत और रामधारी सिंह 'दिनकर'

अपने जीवन की इस मंजिल में 'बच्चन' अपने युवाकाल के आदर्शों और स्वप्नों के भग्नावशेषों के बीच से गुजर रहे थे। पढ़ाई छोड़कर राष्ट्रीय आंदोलन में कूद पड़े थे। अब उस आंदोलन की विफलता का कड़वा घूँट पी रहे थे। एक छोटे से स्कूल में अध्यापक की नौकरी करते हुए वास्तविकता और आदर्श के बीच की गहरी खाई में डूब रहे थे। इस अभाव की दशा में पत्नी के असाध्य रोग की भयंकरता देख रहे थे, अनिवार्य विद्रोह के आतंक से त्रस्त और व्यथित थे। परिणामत: 'बच्चन' का कवि अधिकाधिक अंतर्मुखी होता गया। इस युग और इस 'मूड' की कविताओं के संग्रह 'निशा निमंत्रण' (1938 ई.) तथा 'एकान्त संगीत' 'बच्चन' की सम्भवत: सर्वोत्कृष्ट काव्योपलब्धि हैं। वैयक्तिक, व्यावहारिक जीवन में सुधार हुआ। अच्छी नौकरी मिली, 'नीड़ का निर्माण फिर' से करने की प्रेरणा और निमित्त की प्राप्ति हुई। 'बच्चन' ने अपने जीवन के इस नये मोड़ पर फिर आत्म-साक्षात्कार किया, मन को समझाते हुए पूछा,

'जो बसे हैं, वे उजड़ते हैं, प्रकृति के जड़ नियम से, पर किसी उजड़े हुए को फिर से बसाना कब मना है? '

परम निर्मल मन से 'बच्चन' ने स्वीकार किया है कि

'है चिता की राख कर में, माँगती सिन्दूर दुनियाँ'- व्यक्तिगत दुनिया का इतना सफल, सहज साधारणीकरण दुर्लभ है।

लोकप्रियता

'बच्चन' की कविता की लोकप्रियता का प्रधान कारण उसकी सहजता और संवेदनशील सरलता है और यह सहजता और सरल संवेदना उसकी

अनुभूतिमूलक सत्यता के कारण उपलब्ध हो सकी। 'बच्चन' ने आगे चलकर जो भी किया हो, आरम्भ में उन्होंने केवल आत्मानुभूति, आत्मसाक्षात्कार और आत्माभिव्यक्ति के बल पर काव्य की रचना की। कवि के अहं की स्फीति ही काव्य की असाधारणता और व्यापकता बन गई। समाज की अभावग्रस्त व्यथा, परिवेश का चमकता हुआ खोखलापन, नियति और व्यवस्था के आगे व्यक्ति की असहायता और बेबसी 'बच्चन' के लिए सहज, व्यक्तिगत अनुभूति पर आधारित काव्य विषय थे। उन्होंने साहस और सत्यता के साथ सीधी-सादी भाषा और शैली में सहज ही कल्पनाशीलता और सामान्य बिम्बों से सजा-सँवार कर अपने नये गीत हिन्दी जगत को भेंट किये। हिन्दी जगत ने उत्साह से उनका स्वागत किया।

प्रमुख कृतियाँ

सन्	कृतियाँ
1932	तेरा हार
1935	मधुशाला
1936	मधुबाला
1937	मधुकलश
1938	निशा निमंत्रण
1939	एकांत संगीत
1943	आकुल अंतर
1945	सतरंगिनी
1946	हलाहल
1946	बंगाल का काव्य
1948	खादी के फूल
1948	सूत की माला
1950	मिलन यामिनी
1955	प्रणय पत्रिका
1957	धार के इधर उधर
1958	आरती और अंगारे
1958	बुद्ध और नाचघर
1961	त्रिभंगिमा

1962	चार खेमे चौंसठ खूंटे
1965	दो चट्टानें
1967	बहुत दिन बीते
1968	कटती प्रतिमाओं की आवाज
1969	उभरते प्रतिमानों के रूप
1973	जाल समेटा
1934	बचपन के साथ क्षण भर
1938	खय्याम की मधुशाला
1953	सोपान
1957	मैकबेथ
1958	जनगीता
1959	ओथेलो
1959	उमर खय्याम की रुबाइयाँ
1960	कवियों के सौम्य संत पंत
1960	आज के लोकप्रिय हिन्दी कवि सुमित्रनंदन पंत
1961	आधुनिक कवि 7
1961	नेहरू राजनीतिक जीवनचित्र
1962	नये पुराने झरोखे
1964	अभिनव सोपान
1964	चौसठ रूसी कविताएँ
1968	डब्लू बी यीट्स एंड ऑकल्टिज्म
1968	मरकट द्वीप का स्वर
1966	नागर गीत
1967	बचपन के लोकप्रिय गीत
1969	हैमलेट
1970	भाषा अपनी भाव पराये
1970	पंत के सौ पत्र
1971	प्रवास की डायरी
1973	टूटी छूटी कड़ियां
1981	मेरी कविताई की आधी सदी
1981	सोहं हंस

1982	आठवें दशक की प्रतिनिधि श्रेष्ठ कवितायें
1984	मेरी श्रेष्ठ कविताएँ
1969	क्या भूलूं क्या याद करूं
1970	नीड़ का निर्माण फिर
1977	बसेरे से दूर
1965	दशद्वार से सोपान तक
1983	बच्चन रचनावली के नौ खण्ड

कवि ने नये सुख और सम्पन्नता के युग में प्रवेश किया। 'सतरंगिनी' (1945 ई.) और 'मिलन यामिनी' (1950 ई.) में 'बच्चन' के नये उल्लास भरे युग की सुन्दर गीतोपलब्धियाँ देखने-सुनने को मिलीं।

आत्मकेन्द्रित कवि

'बच्चन' एकान्त आत्मकेन्द्रित कवि हैं, इसी कारण उनकी वे रचनाएँ, जो सहज स्फूर्त नहीं हैं, उदाहरण के लिए 'बंगाल के काल' और महात्मा गांधी की हत्या पर लिखी कविताएँ केवल नीरस ही नहीं सर्वथा कवित्व रहित हो गई हैं। स्वानुभूति का कवि यदि अनुभूति के बिना कविता लिखता है तो उसे सफलता तभी मिल सकती है, जबकि उसकी रचना का विचार तत्त्व या शिल्प उसे सामान्य तुकबंदी से ऊपर उठा सके-और विचारतत्त्व और शिल्प 'बच्चन' के काव्य में अपेक्षाकृत क्षीण और अशक्त हैं। प्रबल काव्यानुभूति के क्षण विरल होते हैं और 'बच्चन' ने बहुत अधिक लिखा है। यह अनिवार्य था कि उनकी उत्तर काल की अधिकांश रचनाएँ अत्यन्त सामान्य कोटि की पद्यकृतियाँ होकर रह जातीं। उन्होंने काव्य के शिल्प में अनेक प्रयोग किये हैं, पर वे प्रयोग अधिकतर उर्दू कवियों के तरह-तरह की बहरों में तरह-तरह की 'जमीन' पर नज्म कहने की चेष्टाओं से अधिक महत्त्व के नहीं हो पाये।

रोचक प्रसंग

उमर खय्याम की रुबाइयों का हरिवंशराय बच्चन द्वारा किया गया अनुवाद एक भावभूमि, एक दर्शन और एक मानवीय संवेदना का परिचय देता है। बच्चनजी ने इस अनुवाद के साथ एक महत्त्वपूर्ण लम्बी भूमिका भी लिखी थी, उसके कुछ अंश इस प्रकार से हैं-

उमर खय्याम के नाम से मेरी पहली जान-पहचान की एक बड़ी मजेदार कहानी है। उमर खय्याम का नाम मैंने आज से लगभग 25 बरस हुए जब जाना था, उस समय मैं वर्नाक्यूलर अपर प्राइमरी के तीसरे या चौथे दरजे में रहा हूँगा। हमारे पिताजी 'सरस्वती' मंगाया करते थे। पत्रिका के आने पर मेरा और मेरे छोटे भाई का पहला काम यह होता था कि उसे खोलकर उसकी तस्वीरों को देख डालें। उन दिनों रंगीन तस्वीर एक ही छपा करती थी, पर सादे चित्र, फोटो इत्यादि कई रहते थे। तस्वीरों को देखकर हम बड़ी उत्सुकता से उस दिन की बाट देखने लगते थे, जब पिताजी और उनकी मित्र-मंडली इसे पढ़कर अलग रख दें। ऐसा होते-होते दूसरे महीने की 'सरस्वती' आने का समय आ जाता था। उन लोगों के पढ़ चुकने पर हम दोनों भाई अपनी कैंची और चाकू लेकर 'सरस्वती' के साथ इस तरह जुट जाते थे, जैसे मेडिकल कॉलेज के विद्यार्थी मुर्दों के साथ। एक-एक करके सारी तस्वीरें काट लेते थे। तस्वीरें काट लेने के बाद पत्रिका का मोल हमको दो कौड़ी भी अधिक जान पड़ता। चित्रों के काटने में जल्दबाजी करने के लिए, अब तक याद है, पिताजी ने कई बार 'गोशमाली' भी की थी।

उन्हीं दिनों की बात है, किसी महीने की 'सरस्वती' में एक रंगीन चित्र छपा था-एक बूढ़े मुस्लिम की तस्वीर थी, चेहरे से शोक टपकता थाय नीचे छपा था-उमर खय्याम। रुबाइयात के किस भाव को दिखाने के लिए यह चित्र बनाया गया था, इसके बारे में कुछ नहीं कह सकता, इस समय चित्र की कोई बात याद नहीं है, सिवा इसके कि एक बूढ़ा मुस्लिम बैठा है और उसके चेहरे पर शोक की छाया है। हम दोनों भाइयों ने चित्र को साथ-ही-साथ देखा और नीचे पढ़ा 'उमर खय्याम'। मेरे छोटे भाई मुझसे पूछ पड़े, 'भाई, उमर खय्याम क्या है?' अब मुझे भी नहीं मालूम था कि उमर खय्याम के क्या माने हैं। लेकिन मैं बड़ा ठहरा, मुझे अधिक जानना चाहिए। जो बात उसे नहीं मालूम है, वह मुझे मालूम है, यही दिखाकर तो मैं अपने बड़े होने की धाक उस पर जमा सकता था। मैं चूकने वाला नहीं था। मेरे गुरुजी ने यह मुझे बहुत पहले सिखा रखा था कि चुप बैठने से गलत जवाब देना अच्छा है।

भगवतीचरण वर्मा के 75वें जन्मदिवस पर हरिवंश राय बच्चन–

मैंने अपनी अक्ल दौड़ायी और चित्र देखते ही देखते बोल उठा, 'देखो यह बूढ़ा कह रहा है-उमर खय्याम, जिसका अर्थ है 'उमर खत्याम', अर्थात उमर खत्म होती है, यह सोचकर बूढ़ा अफसोस कर रहा है।' उन दिनों संस्कृत भी पढ़ा करता

था। 'खय्याम' में कुछ 'क्षय' का आभास मिला होगा और उसी से कुछ ऐसा भाव मेरे मन में आया होगा। बात टली, मैंने मन में अपनी पीठ ठोंकी, हम और तस्वीरों को देखने में लग गये। पर छोटे भाई को आगे चलकर जीवन का ऐसा क्षेत्र चुनना था, जहाँ हर बात को केवल ठीक ही ठीक जानने की जरूरत होती है। जहाँ कल्पना, अनुमान या कयास के लिए सुई की नोक के बराबर भी जगह नहीं है। लड़कपन से ही उनकी आदत हर बात को ठीक-ठीक जानने की ओर रहा करती थी। उन्हें कुछ ऐसा आभास हुआ कि मैं बेपर उड़ा रहा हूँ। शाम को पिताजी से पूछ बैठे। पिताजी ने जो कुछ बतलाया उसे सुनकर मैं झेंप गया। मेरी झेंप को और अधिक बढ़ाने के लिए छोटे भाई बोल उठे, 'पर भाई तो कहते हैं कि यह बूढ़ा कहता है कि उमर खतम होती है-उमर खय्याम यानी उमर खत्याम।' पिताजी पहले तो हँसे, पर फिर गम्भीर हो गये, मुझसे बोले, 'तुम ठीक कहते हो, बूढ़ा सचमुच यही कहता है।' उस दिन मैंने यही समझा कि पिताजी ने मेरा मन रखने के लिए ऐसा कह दिया है, वास्तव में मेरी सूझ गलत थी।

उमर खय्याम की वह तस्वीर बहुत दिनों तक मेरे कमरे की दीवार पर टंगी रही। जिस दुनिया में न जाने कितनी सजीव तस्वीरें दो दिन चमककर खाक में मिल जाती हैं, उसमें उमर खय्याम की निर्जीव तस्वीर कितने दिनों तक अपनी हस्ती बनाये रख सकती थी! उमर खय्याम की तस्वीर तो मिट गयी पर मेरे हृदय पर एक अमिट छाप छोड़ गयी। उमर खय्याम और उमर खतम होती है, यह दोनों बात मेरे मन में एक साथ जुड़ गयीं। तब से जब कभी भी मैंने 'उमर खय्याम' का नाम सुना या लिया, मेरे हृदय में वही टुकड़ा, 'उमर खतम होती है' गूज उठा। यह तो मैंने बाद में जाना कि अपनी गलत सूझ में भी मैंने इन दो बातों में एक बिल्कुल ठीक सम्बन्ध बना लिया था।

काव्य भाषा की गरिमा

सामान्य बोलचाल की भाषा को काव्य भाषा की गरिमा प्रदान करने का श्रेय निश्चय ही सर्वाधिक 'बच्चन' का ही है। इसके अतिरिक्त उनकी लोकप्रियता का एक कारण उनका काव्य पाठ भी रहा है। हिन्दी में कवि सम्मेलन की परम्परा को सुदृढ़ और जनप्रिय बनाने में 'बच्चन' का असाधारण योग है। इस माध्यम से वे अपने पाठकों-श्रोताओं के और भी निकट आ गये। कविता के अतिरिक्त 'बच्चन' ने कुछ समीक्षात्मक निबन्ध भी लिखे हैं, जो गम्भीर अध्ययन और सुलझे हुए विचार प्रतिपादन के लिए पठनीय हैं। उनके

शेक्सपीयर के नाटकों के अनुवाद और 'जनगीता' के नाम से प्रकाशित दोहे-चौपाइयों में 'भगवद गीता' का उल्था 'बच्चन' के साहित्यिक कृतित्त्व के विशेषतया उल्लेखनीय या स्मरणीय अंग माने जायेंगे या नहीं, इसमें संदेह है।

सम्मान और पुरस्कार

हरिवंश राय बच्चन को उनकी कृति 'दो चट्टानें' को 1968 में हिन्दी कविता के लिए 'साहित्य अकादमी पुरस्कार' से सम्मानित किया गया था। उन्हें 'सोवियत लैंड नेहरू पुरस्कार' तथा एफ्रो एशियाई सम्मेलन के 'कमल पुरस्कार' से भी सम्मानित किया गया। बिड़ला फाउन्डेशन ने उनकी आत्मकथा के लिये उन्हें सरस्वती सम्मान दिया था। 1955 में इंदौर के 'होल्कर कॉलेज' के हिन्दी विभाग के अध्यक्ष डॉ. शिवमंगलसिंह सुमन ने हरिवंश राय बच्चन को कवि सम्मेलन की अध्यक्षता के लिए आमंत्रित किया था। हरिवंश राय बच्चन को भारत सरकार द्वारा सन् 1976 में साहित्य एवं शिक्षा के क्षेत्र में पद्म भूषण से सम्मानित किया गया था।

बच्चन संबंधित पुस्तकें

हरिवंश राय बच्चन पर अनेक पुस्तकें लिखी गई हैं। इनमें उनपर हुए शोध, आलोचना एवं रचनावली शामिल हैं। बच्चन रचनावली (1983) के नौ खण्ड हैं। इसका संपादन अजितकुमार ने किया है। अन्य उल्लेखनीय पुस्तकें हैं- हरिवंशराय बच्चन (बिशन टण्डन) गुरुवर बच्चन से दूर (अजितकुमार)

सन्दर्भ

हिन्दी के गौरव–हरिवंश बच्चन, हिन्दी भवन की वेबसाइट पर ('टिप्पणी: यहाँ स्पष्ट रूप से नहीं लिखा कि यह तेरा हार नामक रचना 1929 में छपी थी किन्तु यह पहली रचना थी और रचना-यात्रा की शुरूआत 1929 में हुई लिखित है अत: यह माना जा सकता है कि इस रचना का प्रकाशन 1929 में हुआ)।

हरिवंश राय बच्चन–कवि परिचय–आत्म-परिचय और एक गीत इस कविता में कवि हरिवंशराय बच्चन ने अपने स्वभाव एवं व्यक्तित्त्व के बारे में बताया है। कवि जग के जीवन से जुड़ा भी है और इससे पृथक् भी है। वह इस संसार का भार लिए हुए फिरता है, लेकिन उसके जीवन में प्यार की भावना भी है।

बाहरी कड़ियाँ

1. मधुशाला का मूल पाठ (विकीस्रोत पर)
2. हरिवंश राय बच्चन (विकीस्रोत पर)
3. हरिवंशराय बच्चन हरिवंशराय बच्चन के बारे में
4. हरिवंश राय बच्चन की रचनाएँ कविता कोश में
5. दशद्वार से सोपान तक (बच्चन जी की आत्मकथा, गूगल पुस्तक)।

तेरा हार हरिवंशराय बच्चन

1. स्वीकृत

(1)

घर से यह सोच उठी थी
उपहार उन्हें मैं दूँगी,
करके प्रसन्न मन उनका
उनकी शुभ आशिष लूँगी।

(2)

पर जब उनकी वह प्रतिभा
नयनों से देखी जाकर,
तब छिपा लिया अञ्चल में
उपहार हार सकुचा कर।

(3)

मैले कपड़ों के भीतर
तण्डुल जिसने् पहचाने,
वह हार छिपाया मेरा
रहता कब तक अनजाने ?

(4)

मैं लज्जित मूक खड़ी थी,
प्रभु ने मुस्करा बुलाया,
फिर खड़े सामने मेरे
होकर निज शीश झुकाया !

2. आशे !

(1)

भूल तब जाता दुख अनन्त,
निराशा पतझड़ का हो अन्त
हृदय में छाता पुनः वसन्त,
दमक उठता मेरा मुख म्लान
देवि ! जब करता तेरा ध्यान।

(2)

पथिक जो बैठा हिम्मतहार,
जिसे लगता था जीवन भार,
कमर कसता होता तैयार,
पुनः उठता करता प्रस्थान,
देवि ! जब करता तेरा ध्यान।

(3)

डूबते पा जाता आधार,
सरस होता जीवन निस्सार,
सार मय फिर होता संसार,
सरल हो जाते कार्य महान,
देवि ! जब करता तेरा ध्यान।

(4)

शक्ति का फिर होता संचार,
सूझ पड़ता फिर कुछ-कुछ पार,
हाथ में फिर लेता पतवार,
पुनः खेता जीवन जल यान,
देवि ! जब करता तेरा ध्यान।

3. नैराश,

(1)

निशा व्यतीत हो चुकी कब की !
सूर्य किरण कब फूटी!

चहल-पहल हो उठी जगत में,
नींद न तेरी टूटी!

(2)

उठा उठा कर हार गई मैं,
आँख न तूने खोली,
क्या तेरे जीवन-अभिनय की
सारी लीला हो ली ?

(3)

जीवन का तो चिन्ह यही है
सो कर फिर जग जाना,
क्या अनंत निद्रा में सोना
नहीं मृत्यु का आना ?

(4)

तुझे न उठता देख मुझे है
बार बार भ्रम होता--
क्या मैं कोई मृत शरीर को
समझ रही हूँ सोता !

4. कीर

(1)

'कीर ! तू क्यों बैठा मन मार,
शोक बन कर साकार,
शिथिल तन मग्न विचार !
आकर तुझ पर टूट पड़ा है किस चिंता का भार ?'

(2)

इसे सुन पक्षी पंख पसार,
तीलियों पर पर मार,
हार बैठा लाचार,
पिंजड़े के तारों से निकली मानो यह झङ्कार-

(3)

'कहाँ बन बन स्वच्छन्द विहार !
कहाँ वन्दी-गृह द्वार !'

महा यह अत्याचार–
एक दूसरे का ले लेना 'जन्म सिद्ध अधिकार'।

5. झण्डा

(1)

हृदय हमारा करके गद्‌गद
भाव अनेक उठाता है,
उच्च हमारा होकर झण्डा
जब 'फर–फर' फहराता है!

(2)

अहे ! नहीं फहराता झण्डा
वायु वेग से चञ्चल हो,
हमें बुलाती है माँ भारत
हिला हिला कर अञ्चल को !

(3)

आओ युवको, चलें सुनें क्या
माता हमसे कहती आज।
हाथ हमारे है रखना माँ
भारत के अञ्चल की लाज।

6. वन्दी

(1)

'पड़े वन्दी क्यों कारागार ?
चले तुम कौन कुचाल ?
चुराया किसका माल ?
छीना क्या किसका जिस पर था तुम्हें नहीं अधिकार ?'

(2)

'न था मन में कोई कुविचार,
न थी दौलत की चाह,
न थी धन की परवाह,
था अपराध हमारा केवल किया देश को प्यार !

(3)

शीश पर मातृ भूमि-ऋण भार,
उसे हूँ रहा उतार।
देशहित कारागार-
कारागार नहीं, वह तो है स्वतन्त्रता का द्वार !'

7. वन्दी मित्र

(1)

जेल कोठरी के मैं द्वार
वन्दी ! तुझसे मिलने आया,
नतमस्तक मन में शर्माया,
मित्र ! मित्रता का मुझसे कुछ निभ न सका व्यवहार।

(2)

कैसे आता तेरे साथ ?
देश भक्ति करने का अवसर,
बड़े भाग्य से मिले मित्रवर !
मेरी किस्मत में वह कैसे लिखते विधि के हाथ !

(3)

मित्र ! तुम्हारे मंगल भाल
अंकित है स्वतन्त्र नित रहना,
मेरे, बंदीगृह दुख सहना,
'मैं स्वतन्त्र ! तू वन्दी ! कैसे ?'-तेरा ठीक सवाल।

(4)

मित्र ! नहीं क्या यह अविवाद ?
स्वतंत्र ही स्वतन्त्रता खोता,
वन्दी कभी न वन्दी होता,
अपने को वन्दी कर सकते जो स्वतन्त्र आजाद।

(5)

कम न देश का मुझको प्यार।
साथ तुम्हारा मैं भी देता,

अंग अंग यदि जकड़ न लेता,
मेरा, प्यारे मित्र ! जगत का काला कारागार।

8. कोयल

1.

अहे, कोयल की पहली कूक !
अचानक उसका पड़ना बोल,
हृदय में मधुरस देना घोल,
श्रवणों का उत्सुक होना, बनाना जि]वा का मूक !

2.

कूक, कोयल, या कोई मंत्र,
फूँक जो तू आमोद-प्रमोद,
भरेगी वसुंधरा की गोद ?
काया-कल्प-क्रिया करने का ज्ञात तुझे क्या तंत्र ?

3.

बदल अब प्रकृति पुराना ठाट
करेगी नया-नया शृंगार,
सजाकर निज तन विविध प्रकार,
देखेगी ऋतुपति-प्रियतम के शुभागमन की बाट।

4.

करेगा आकर मंद समीर
बाल-पल्लव-अधरों से बात,
ढँकेंगी तरुवर गण के गात
नई पत्तियाँ पहना उनको हरी सुकोमल चीर।

5.

वसंती, पीले, नील, लाले,
बैंगनी आदि रंग के फूल,
फूलकर गुच्छ-गुच्छ में झूल,
झूमेंगे तरुवर शाखा में वायु-हिंडोले डाल।

6.

मक्खियाँ कृपणा होंगी मग्न,
माँग सुमनों से रस का दान,

सुना उनको निज गुन-गुन गान,
मधु-संचय करने में होंगी तन-मन से संलग्न !

7.

नयन खोले सर कमल समान,
बनी-वन का देखेंगे रूप–
युगल जोड़ी सुछवि अनूप,
उन कंजों पर होंगे भ्रमरों के नर्तन गुंजान।

8.

बहेगा सरिता में जल श्वेत,
समुज्ज्वल दर्पण के अनुरूप,
देखकर जिसमें अपना रूप,
पीत कुसुम की चादर ओढ़ेंगे सरसों के खेत।

9.

कुसुम-दल से पराग को छीन,
चुरा खिलती कलियों की गंध,
कराएगा उनका गठबंध,
पवन-पुरोहित गंध सूरज से रज सुगंध से भीन।

10.

फिरेंगे पशु जोड़े ले संग,
संग अज-शावक, बाल-कुरंग,
फड़कते हैं जिनके प्रत्यंग,
पर्वत की चट्टानों पर कूदेंगे भरे उमंग।

11.

पक्षियों के सुन राग-कलाप–
प्राकृतिक नाद, ग्राम सुर, ताल,
शुष्क पड़ जाएँगे तत्काल,
गंधर्वों के वाद्य-यंत्र किन्नर के मधुर अलाप।

12.

इन्द्र अपना इन्द्रासन् त्याग,
अखाड़े अपने करके बंद,

परम उत्सुक-मन दौड़ अमंद,
खोलेगा सुनने को नंदन-द्वार भूमि का राग !

13.

करेगी मत्त मयूरी नृत्य
अन्य विहगों का सुनकर गान,
देख यह सुरपति लेगा मान,
परियों के नर्तन हैं केवल आडंबर के कृत्य !

14.

अहे, फिर 'कुऊ' पूर्ण-आवेश !
सुनाकर तू ऋतुपति-संदेश,
लगी दिखलाने उसका वेश,
क्षणिक कल्पने मुझे घमाए तूने कितने देश !

15.

कोकिले, पर यह तेरा राग
हमारे नग्न-बुभुक्षित देश
के लिए लाया क्या संदेश ?
साथ प्रकृति के बदलेगा इस दीन देश का भाग ?

9. चुम्बन

(1)

ऐ छोटे विहग सुकुमार !
तेरे कोमल चंचु अधर से
निकल रहे स्नेहाप्लुत स्वर से
लगता, कोई करे किसी को निर्भय चुम्बन प्यार।

(2)

किसको करते चुम्बन प्यार ?
क्या मानव आंखों से देखी
गई ना बुद्धि-चक्षु अवरेखी
उसको ऊषा काल बहे जो शीतल मन्द बयार ?

(3)

या सुमनों में शिशु कुमार,
जो सुगंध का अब तक सोया,

रजनी के स्वप्नों में खोया,
उसे जगाते धीमे धीमे कर के चुम्बन-प्यार ?

(4)

या तुम शशि किरणों के तार
से जो चुम्बन कर
और सितारों का प्रकाश वर
चूमचूम सस्नेह विदा करते हो, अन्तिम बार ?

(5)

या तुम बाल सूर्य के हाथ,
स्वर्ण रंग में गए रंगा,,
गए तुम्हारी ओर बढ़ा,,
करते हो आभूषित अपने रजत-चुम्बनों साथ ?

(6)

या तुम उस चुम्बन का, तात !
पाठ याद करते उठ भोर,
जिसे लिटा अञ्चल पर छोर
अपने तुमको, मातृ विहगिनि ने सिखलाया रात !

(7)

या तुम वह चुम्बन प्रति भोर
उठ कर याद किया करते हो,
(मुझे बताते क्यों डरते हो?)
जिससे तुम्हें किसी ने भेजा जीवन के इस ओर ?

(8)

तब की तो है मुझे न याद,
पर अतीत जीवन के चुम्बन
कितने चमका करें हृद्गगन !
जिनकी मूकस्मृति मेरे मन भरती मधुर विषाद!

(9)

यदि न जगत के धंधे फन्द
होते, मानस-गगन घूमता,

प्रति चुम्बन को पुनः चूमता,
सदा बना मैं तुमसा रहता एक विहंग स्वच्छन्द !

10. दुख में

(1)

'पड़ी दुखों की तुझ पर मार !
दुखों में सुख भरा जान तू,
रो रो कर मुख न कर म्लान तू,
हँस, हँस, हलका हो जाएगा तेरे दुख का भार।

(2)

निज बल पर जिनको अभिमान
संकट में साहस दिखलाते,
दुखों को हैं दूर हटाते
दुख पड़ने पर जो हँसते हैं वही वीर बलवान'।

(3)

'मिले मुझे दुख लाखों बार,
पर, दुख में सुख सार समाया-
व्यंग, समझ मैं कभी न पाया।
सुख में हंसूं, दुखों में रोऊँ-सीधा सा व्यवहार।

(4)

कोमल से कोमल भी शूल
जब जब है तन मेरे गड़ता,
बच्चों सा मैं हूं रो पड़ता,
कांटों को मैं कभी न अब तक समझ सका हूँ फूल।

(5)

एक नियम जीवन में पाल
रहा सदा से हूँ मैं अविचल,
कोई कहे बली या निर्बल,
उन्हें चुभा रहने देता हूँ, देता नहीं निकाल !'

11. दुखों का स्वागत

(1)

नदियाँ नीर भरें जलनिधि में
जो जल राशि अघा,।
शुष्क, जल रहित मरुस्थली को
दिनकर और तपा,।

(2)

हृष्ट-पुष्ट नित स्वस्थ रहे, कृश
कौण रुग्न हो जा,,
लक्ष्मी के मन्दिर में स्वागत
धनी महाजन पाए।

(3)

अंधकार अंधों को मिलता,
उसे नयन जो पाए
ज्योति मिले, यह नियम जगत का
सम समान को धाए।

(4)

प्यार पास जाए प्यारों के,
सुख सुखियों पर छाए,
आशिष आशिष वानो पर, मुझ
दुखिया पर दुख आए !

12. आदर्श प्रेम

1.

प्यार किसी को करना, लेकिन-
कह कर उसे बताना क्या ?
अपने को अर्पण करना पर-
औरों को अपनाना क्या ?

2.

गुण का ग्राहक बनना, लेकिन-
गा कर उसे सुनाना क्या ?

मन के कल्पित भावों से
औरों को भ्रम में लाना क्या ?

3.

ले लेना सुगंध सुमनों की,
तोड़ उन्हें मुरझाना क्या ?
प्रेम हार पहनाना लेकिन-
प्रेम पाश फैलाना क्या ?

4.

त्याग-अंक में पलें प्रेम शिशु
उनमें स्वार्थ बताना क्या ?
दे कर हृदय हृदय पाने की
आशा व्यर्थ लगाना क्या ?

13. तुमसे

(1)

नहीं चाहता तुलसी दल बन
शीश तुम्हारे चढ़ पाऊं,
नहीं, हार की कलियां बन कर
गले तुम्हारे पड़ जाऊं।

(2)

नहीं भुजाओं में रख तुमको
इन हाथों को करूं पवित्र,
नहीं, हृदय के अन्दर वन्दी
कर के रखूं चित्र।

(3)

नहीं चाहता दिखलाने को
तव भक्तों का वेश धरूं,
नहीं, सखा बन सदा तुम्हारे
दाएँ बाएँ फिरा करूं।

(4)

इच्छा केवल रजकण में मिल
तव मन्दिर के निकट पड़ूं,

आते जाते कभी तुम्हारे
श्री-चरणों से लिपट पड़ूं।

14. मधुर स्मृति

(1)

याद मुझे है वह दिन पहले
जिस दिन तुझको प्यार किया,
तेरा स्वागत करने को जब
खोल हृदय का द्वार दिया।

(2)

मन मन्दिर में तुझे बिठा कर
तेरा जब सत्कार किया,
झुक झुक तेरे चरणों का जब
चुम्बन बारम्बार किया।

(3)

स्नेहमयी वह दृष्टि प्रथम ही
थी जिसने् तुझको देखा,
याद नहीं है मुझे, तुझे
देखा पहले या प्यार किया !

(4)

हर्षित हो कर क्यों न सराहूं
बार बार उस दिन के भाग,
जिस दिन तूने प्रेम हमारा
खुले हृदय स्वीकार किया !

15. दुखिया का प्यार

(1)

'प्रेम का यह अनुपम व्यवहार !
पास न मेरे हैं वे आते,
मुझे न अपने पास बुलाते,
दूर दूर से कहते हैं, करता हूँ तुझको प्यार !!'

(2)

'आपदा के ऐसे आगार--
जहाँ किसी को छू हम देते,
घेर उसे दुख संकट लेते !
मिल कर तुझसे क्यों तुझ पर भी डालूं दुख का भार ?

(3)

विरह के दुख सौ नहीं, हजार
सहा करूं यदि जीवन भर मैं,
तुझे न दुखित बनाऊँ पर मैं,
'तू है सुखी'-यही तो मेरे जीवन का आधार।

(4)

प्रेम का ही तोड़ूंगा तार-
(चाहे मृत्यु भले ही आए)
ज्ञात मुझे यदि यह हो जाए-
दुखी बना सकता है तुझको इस दुखिया का प्यार '।

16. कलियों से

1.

अहे ! मैंने कलियों के साथ,
जब मेरा चंचल बचपन था,
महा निर्दयी मेरा मन था,
अत्याचार अनेक कि, थे,
कलियों को दुख दीर्घ दिए थे,
तोड़ इन्हें बागों से लाता,
छेद-छेद कर हार बनाता !
क्रूर कार्य यह कैसे करता,
सोंच इन्हें हूँ आहें भरता।
कलियो ! तुमसे क्षमा माँगते ये अपराधी हाथ।

2.

अहे ! वह मेरे प्रति उपकार !
कुछ दिन में कुम्हला ही जाती,

गिरकर भूमि समाधि बनाती।
कौन जानता मेरा खिलना ?
कौन, नाज से डुलना-हिलना ?
कौन गोद में मुझको लेता ?
कौन प्रेम का परिचय देता ?
मुझे तोड़ की बड़ी भलाई,
काम किसी के तो कुछ आई,
बनी रही दे-चार घड़ी तो किसी गले का हार।

3.

अहे ! वह क्षणिक प्रेम का जोश !
सरस-सुगंधित थी तू जब तक,
बनी स्नेह-भाजन थी तब तक।
जहाँ तनिक-सी तू मुरझाई,
फेंक दी गई, दूर हटाई।
इसी प्रेम से क्या तेरा हो जाता है परितोष ?

4.

बदलता पल-पल पर संसार
हृदय विश्व के साथ बदलता,
प्रेम कहाँ फिर लहे अटलता ?
इससे केवल यही सोचकर,
लेती हूँ सन्तोष हृदय भर–
मुझको भी था किया किसी ने कभी हृदय से प्यार !

17. विरह विषाद

(1)

चंद्र ! आते हो मृदुल प्रभात-
भू का रवि जब अञ्चल धरता,
किरण, कुसुम, कलरव से भरता
उसे, बना लेते क्यों अपना मलिन, हीन द्युति गात ?

(2)

निशा रानी का विरह विषाद ?
शोक प्रकट क्यों इतना करते ?
छिपते जाते आहें भरते।
मिलन प्रणयिनी से तो निश्चित एक दिवस के बाद !

(3)

नहीं कुछ सुनते मेरी बात ?
देव ! दुख विरह क्षणिक तुम्हें जब,
इतना होता, बतलायो अब,
धरें धैर्य मानव हम क्यों तब,
हो वियोग जिनका मिलना फिर दूर ? निकट ? अज्ञात !

18. मूक प्रेम

(1)

हमारी स्नेह मूर्ति ! कुछ बोल।
भावना के पुष्पों के हार,
गूंथ सुकुमार स्नेह के तार,
चढ़ा, मैंने तेरे द्वार,
भाए तुझे, न भाए–कह दे कुछ तो मुँह को खोल।

(2)

शास्त्र के सिद्ध, सत्य, अनमोल
वचन बतलाते युग प्राचीन
भक्त जब होता भक्ति विलीन,
श्रवण कर उसके सविनय, दीन
वचन, मूक पाषाण मूर्तियां भी पड़ती थीं बोल !

(3)

आ गया हाय ! समय अब कौन ?
हैं सजीव जो मधुर बोलतीं,
बात बात में अमृत घोलतीं,
सहज हृदय के भाव खोलतीं,
वे भी क्या भावना भक्ति से हो जायेंगी मौन !

(4)

नयन में स्नेह भरा, मत मोड़
आँख, कर प्रकटित अपना भाव,
भयकर मुझसे अधिक दुराव।
जानती अकथित प्रेम प्रभाव ?
प्रबल धार यह बाहर आती बाँध हृदय का तोड़ !

5

सुमित्रानन्दन पन्त

सुमित्रनंदन पंत **(20 मई 1900 - 28 दिसम्बर 1977)** हिंदी साहित्य में छायावादी युग के चार प्रमुख स्तंभों में से एक हैं। इस युग को जयशंकर प्रसाद, महादेवी वर्मा, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' और रामकुमार वर्मा जैसे कवियों का युग कहा जाता है। उनका जन्म कौसानी बागेश्वर में हुआ था। झरना, बर्फ, पुष्प, लता, भ्रमर-गुंजन, उषा-किरण, शीतल पवन, तारों की चुनरी ओढ़े गगन से उतरती संध्या ये सब तो सहज रूप से काव्य का उपादान बने। निसर्ग के उपादानों का प्रतीक व बिम्ब के रूप में प्रयोग उनके काव्य की विशेषता रही। उनका व्यक्तित्त्व भी आकर्षण का केंद्र बिंदु था। गौर वर्ण, सुंदर सौम्य मुखाकृति, लंबे घुंघराले बाल, सुगठित शारीरिक सौष्ठव उन्हें सभी से अलग मुखरित करता था।

सुमित्रनन्दन पन्त का जन्म बागेश्वर जिले के कौसानी नामक ग्राम में 20 मई 1900 ई. को हुआ। जन्म के छह घंटे बाद ही उनकी माँ का निधन हो गया। उनका लालन-पालन उनकी दादी ने किया। उनका नाम गोसाई दत्त रखा गया। वह गंगादत्त पंत की आठवीं संतान थे। 1910 में शिक्षा प्राप्त करने गवर्नमेंट हाईस्कूल अल्मोड़ा गये। यहीं उन्होंने अपना नाम गोसाई दत्त से बदलकर सुमित्रनंदन पंत रख लिया। 1918 में मँझले भाई के साथ काशी गये और क्वींस कॉलेज में पढ़ने लगे। वहाँ से हाईस्कूल परीक्षा उत्तीर्ण कर म्योर कालेज में पढ़ने के लिए इलाहाबाद चले गए। 1921 में असहयोग आंदोलन के दौरान महात्मा

गांधी के भारतीयों से अंग्रेजी विद्यालयों, महाविद्यालयों, न्यायालयों एवं अन्य सरकारी कार्यालयों का बहिष्कार करने के आह्वान पर उन्होंने महाविद्यालय छोड़ दिया और घर पर ही हिन्दी, संस्कृत, बँगला और अंग्रेजी भाषा-साहित्य का अध्ययन करने लगे। इलाहाबाद में ही उनकी काव्यचेतना का विकास हुआ। कुछ वर्षों के बाद उन्हें घोर आर्थिक संकट का सामना करना पड़ा। कर्ज से जूझते हुए पिता का निधन हो गया। कर्ज चुकाने के लिए जमीन और घर भी बेचना पड़ा। इन्हीं परिस्थितियों में वह मार्क्सवाद की ओर उन्मुख हुये। 1931 में कुँवर सुरेश सिंह के साथ कालाकांकर, प्रतापगढ़ चले गये और अनेक वर्षों तक वहीं रहे। महात्मा गाँधी के सान्निध्य में उन्हें आत्मा के प्रकाश का अनुभव हुआ। 1938 में प्रगतिशील मासिक पत्रिका 'रूपाभ' का सम्पादन किया। श्री अरविन्द आश्रम की यात्रा से आध्यात्मिक चेतना का विकास हुआ। 1950 से 1957 तक आकाशवाणी में परामर्शदाता रहे। 1958 में 'युगवाणी' से 'वाणी' काव्य संग्रहों की प्रतिनिधि कविताओं का संकलन 'चिदम्बरा' प्रकाशित हुआ, जिसपर 1968 में उन्हें 'भारतीय ज्ञानपीठ' पुरस्कार प्राप्त हुआ। 1960 में 'कला और बूढ़ा चाँद' काव्य संग्रह के लिए 'साहित्य अकादमी पुरस्कार' प्राप्त हुआ। 1961 में 'पद्मभूषण' की उपाधि से विभूषित हुये। 1964 में विशाल महाकाव्य 'लोकायतन' का प्रकाशन हुआ। कालान्तर में उनके अनेक काव्य संग्रह प्रकाशित हुए। वह जीवन-पर्यन्त रचनारत रहे। अविवाहित पंत जी के अंतस्थल में नारी और प्रकृति के प्रति आजीवन सौन्दर्यपरक भावना रही। उनकी मृत्यु 28 दिसम्बर 1977 को हुई।

साहित्य सृजन

सात वर्ष की उम्र में, जब वे चौथी कक्षा में ही पढ़ रहे थे, उन्होंने कविता लिखना शुरू कर दिया था। 1918 के आसपास तक वे हिंदी के नवीन धारा के प्रवर्तक कवि के रूप में पहचाने जाने लगे थे। इस दौर की उनकी कविताएं वीणा में संकलित हैं। 1926 में उनका प्रसिद्ध काव्य संकलन 'पल्लव' प्रकाशित हुआ। कुछ समय पश्चात वे अपने भाई देवीदत्त के साथ अल्मोडा आ गये। इसी दौरान वे मार्क्स व फ्रायड की विचारधारा के प्रभाव में आये। 1938 में उन्होंने 'रूपाभ' नामक प्रगतिशील मासिक पत्र निकाला। शमशेर, रघुपति सहाय आदि के साथ वे प्रगतिशील लेखक संघ से भी जुड़े रहे। वे 1950 से 1957 तक आकाशवाणी से जुडे रहे और मुख्य-निर्माता के पद पर कार्य किया। उनकी विचारधारा योगी

अरविन्द से प्रभावित भी हुई जो बाद की उनकी रचनाओं 'स्वर्णकिरण' और 'स्वर्णधूलि' में देखी जा सकती है। "वाणी" तथा "पल्लव" में संकलित उनके छोटे गीत विराट व्यापक सौंदर्य तथा पवित्रता से साक्षात्कार कराते हैं। "युगांत" की रचनाओं के लेखन तक वे प्रगतिशील विचारधारा से जुडे प्रतीत होते हैं। "युगांत" से "ग्राम्या" तक उनकी काव्ययात्रा प्रगतिवाद के निश्चित व प्रखर स्वरों की उद्घोषणा करती है। उनकी साहित्यिक यात्र के तीन प्रमुख पड़ाव हैं–प्रथम में वे छायावादी हैं, दूसरे में समाजवादी आदर्शों से प्रेरित प्रगतिवादी तथा तीसरे में अरविन्द दर्शन से प्रभावित अध्यात्मवादी। 1907 से 1918 के काल को स्वयं उन्होंने अपने कवि-जीवन का प्रथम चरण माना है। इस काल की कविताएँ वाणी में संकलित हैं। सन् 1922 में उच्छ्वास और 1926 में पल्लव का प्रकाशन हुआ। सुमित्रनंदन पंत की कुछ अन्य काव्य कृतियाँ हैं - ग्रन्थि, गुंजन, ग्राम्या, युगांत, स्वर्णकिरण, स्वर्णधूलि, कला और बूढ़ा चाँद, लोकायतन, चिदंबरा, सत्यकाम आदि। उनके जीवनकाल में उनकी 28 पुस्तकें प्रकाशित हुईं, जिनमें कविताएं, पद्य-नाटक और निबंध शामिल हैं। पंत अपने विस्तृत वाङमय में एक विचारक, दार्शनिक और मानवतावादी के रूप में सामने आते हैं, किंतु उनकी सबसे कलात्मक कविताएं 'पल्लव' में संगृहीत हैं, जो 1918 से 1925 तक लिखी गई 32 कविताओं का संग्रह है। इसी संग्रह में उनकी प्रसिद्ध कविता 'परिवर्तन' सम्मिलित है। 'तारापथ' उनकी प्रतिनिधि कविताओं का संकलन है। उन्होंने ज्योत्स्ना नामक एक रूपक की रचना भी की है। उन्होंने मधुज्वाल नाम से उमर खय्याम की रुबाइयों के हिंदी अनुवाद का संग्रह निकाला और डॉ० हरिवंश राय बच्चन के साथ संयुक्त रूप से खादी के फूल नामक कविता संग्रह प्रकाशित करवाया।

सुमित्रानंदन पंत

हिन्दी साहित्य में छायावादी युग के चार स्तंभों में से एक हैं। सुमित्रनंदन पंत नये युग के प्रवर्तक के रूप में आधुनिक हिन्दी साहित्य में उदित हुए। सुमित्रनंदन पंत ऐसे साहित्यकारों में गिने जाते हैं, जिनका प्रकृति चित्रण समकालीन कवियों में सबसे बेहतरीन था। आकर्षक व्यक्तित्त्व के धनी सुमित्रनंदन पंत के बारे में साहित्यकार राजेन्द्र यादव कहते हैं कि 'पंत अंग्रेजी के रूमानी कवियों जैसी वेशभूषा में रहकर प्रकृति केन्द्रित साहित्य लिखते थे।' पंत लोगों से बहुत जल्द प्रभावित हो जाते थे। पंत ने महात्मा गाँधी और कार्ल मार्क्स से प्रभावित होकर उन

पर रचनाएँ लिख डालीं। हिंदी साहित्य के विलियम वर्ड्सवर्थ कहे जाने वाले इस कवि ने महानायक अमिताभ बच्चन को 'अमिताभ' नाम दिया था। पद्मभूषण, ज्ञानपीठ पुरस्कार और साहित्य अकादमी पुरस्कारों से नवाजे जा चुके पंत की रचनाओं में समाज के यथार्थ के साथ-साथ प्रकृति और मनुष्य की सत्ता के बीच टकराव भी होता था। हरिवंश राय 'बच्चन' और श्री अरविंदो के साथ उनकी जिंदगी के अच्छे दिन गुजरे। आधी सदी से भी अधिक लंबे उनके रचनाकाल में आधुनिक हिंदी कविता का एक पूरा युग समाया हुआ है।

कवि के बचपन का नाम 'गुसाईं दत्त' था। स्लेटी छतों वाले पहाड़ी घर, आंगन के सामने आड़ू, खुबानी के पेड़, पक्षियों का कलरव, सर्पिल पगडण्डियां, बांज, बुरांश व चीड़ के पेड़ों की बयार व नीचे दूर दूर तक मखमली कालीन सी पसरी कत्यूर घाटी व उसके उपर हिमालय के उत्तंग शिखरों और दादी से सुनी कहानियों व शाम के समय सुनायी देने वाली आरती की स्वर लहरियों ने गुसाईं दत्त को बचपन से ही कवि हृदय बना दिया था। क्योंकि जन्म के छरू घण्टे बाद ही इनकी माँ का निधन हो गया था, इसीलिए प्रकृति की यही रमणीयता इनकी माँ बन गयी। प्रकृति के इसी ममतामयी छांव में बालक गुसाईं दत्त धीरे- धीरे यहां के सौन्दर्य को शब्दों के माध्यम से कागज में उकेरने लगा। पिता 'गंगादत्त' उस समय कौसानी चाय बगीचे के मैनेजर थे। उनके भाई संस्कृत व अंग्रेजी के अच्छे जानकार थे, जो हिन्दी व कुमाँऊनी में कविताएं भी लिखा करते थे। यदाकदा जब उनके भाई अपनी पत्नी को मधुर कंठ से कविताएं सुनाया करते तो बालक गुसाईं दत्त किवाड़ की ओट में चुपचाप सुनता रहता और उसी तरह के शब्दों की तुकबन्दी कर कविता लिखने का प्रयास करता। बालक गुसाईं दत्त की प्राइमरी तक की शिक्षा कौसानी के श्वर्नाक्यूलर स्कूल' में हुई। इनके कविता पाठ से मुग्ध होकर स्कूल इंसपैक्टर ने इन्हें उपहार में एक पुस्तक दी थी। ग्यारह साल की उम्र में इन्हें पढ़ाई के लिये अल्मोड़ा के 'गवर्नमेंट हाईस्कूल' में भेज दिया गया। कौसानी के सौन्दर्य व एकान्तता के अभाव की पूर्ति अब नगरीय सुख वैभव से होने लगी। अल्मोड़ा की खास संस्कृति व वहां के समाज ने गुसाईं दत्त को अन्दर तक प्रभावित कर दिया। सबसे पहले उनका ध्यान अपने नाम पर गया। और उन्होंने लक्ष्मण के चरित्र को आदर्श मानकर अपना नाम गुसाईं दत्त से बदल कर 'सुमित्रनंदन' कर लिया। कुछ समय बाद नेपोलियन के युवावस्था के चित्र से प्रभावित होकर अपने लम्बे व घुंघराले बाल रख लिये।

साहित्यिक परिचय

अल्मोड़ा में तब कई साहित्यिक व सांस्कृतिक गतिविधियां होती रहती थीं जिसमें पंत अक्सर भाग लेते रहते। स्वामी सत्यदेव जी के प्रयासों से नगर में 'शुद्ध साहित्य समिति' नाम से एक पुस्तकालय चलता था। इस पुस्तकालय से पंत जी को उच्च कोटि के विद्वानों का साहित्य पढ़ने को मिलता था। कौसानी में साहित्य के प्रति पंत जी में जो अनुराग पैदा हुआ वह यहां के साहित्यिक वातावरण में अब अंकुरित होने लगा। कविता का प्रयोग वे सगे सम्बन्धियों को पत्र लिखने में करने लगे। शुरुआती दौर में उन्होंने 'बागेश्वर के मेले', 'वकीलों के धनलोलुप स्वभाव' व 'तम्बाकू का धुंआ' जैसी कुछ छुटपुट कविताएं लिखी। आठवीं कक्षा के दौरान ही उनका परिचय प्रख्यात नाटककार गोविन्द बल्लभ पंत, श्यामाचरण दत्त पंत, इलाचन्द्र जोशी व हेमचन्द्र जोशी से हो गया था। अल्मोड़ा से तब हस्तलिखित पत्रिका 'सुधाकर' व 'अल्मोड़ा अखबार' नामक पत्र निकलता था जिसमें वे कविताएं लिखते रहते। अल्मोड़ा में पंत जी के घर के ठीक उपर स्थित गिरजाघर की घण्टियों की आवाज उन्हें अत्यधिक सम्मोहित करती थीं। अक्सर प्रत्येक रविवार को वे इस पर एक कविता लिखते। 'गिरजे का घण्टा' शीर्षक से उनकी यह कविता सम्भवतः पहली रचना है-

नभ की उस नीली चुप्पी पर घण्टा है एक टंगा सुन्दर
जो घड़ी घड़ी मन के भीतर कुछ कहता रहता बज बज कर

दुबले पतले व सुन्दर काया के कारण पंत जी को स्कूल के नाटकों में अधिकतर स्त्री पात्रों का अभिनय करने को मिलता। 1916 में जब वे जाड़ों की छुट्टियों में कौसानी गये तो उन्होंने 'हार' शीर्षक से 200 पृष्ठों का 'एक खिलौना' उपन्यास लिख डाला। जिसमें उनके किशोर मन की कल्पना के नायक नायिकाओं व अन्य पात्रों की मौजूदगी थी। कवि पंत का किशोर कवि जीवन कौसानी व अल्मोड़ा में ही बीता था। इन दोनों जगहों का वर्णन भी उनकी कविताओं में मिलता है।

स्वतंत्रता संग्राम में योगदान

1921 के असहयोग आंदोलन में उन्होंने कॉलेज छोड़ दिया था, पर देश के स्वतंत्रता संग्राम की गंभीरता के प्रति उनका ध्यान 1930 के नमक सत्याग्रह के समय से अधिक केंद्रित होने लगा, इन्हीं दिनों संयोगवश उन्हें कालाकांकर में ग्राम जीवन के अधिक निकट संपर्क में आने का अवसर मिला। उस ग्राम

जीवन की पृष्ठभूमि में जो संवेदन उनके हृदय में अंकित होने लगे, उन्हें वाणी देने का प्रयत्न उन्होंने युगवाणी (1938) और ग्राम्या (1940) में किया। यहाँ से उनका काव्य, युग का जीवन-संघर्ष तथा नई चेतना का दर्पण बन जाता है। स्वर्णकिरण तथा उसके बाद की रचनाओं में उन्होंने किसी आध्यात्मिक या दार्शनिक सत्य को वाणी न देकर व्यापक मानवीय सांस्कृतिक तत्त्व को अभिव्यक्ति दी, जिसमें अन्न प्राण, मन आत्मा, आदि मानव-जीवन के सभी स्वरों की चेतना को संयोजित करने का प्रयत्न किया गया।

काव्य एवं साहित्य की साधना

पंतजी संघर्षों के एक लंबे दौर से गुजरे, जिसके दौरान स्वयं को काव्य एवं साहित्य की साधना में लगाने के लिए उन्होंने अपनी आजीविका सुनिश्चित करने का प्रयास किया। बहुत पहले ही उन्होंने यह समझ लिया था कि उनके जीवन का लक्ष्य और कार्य यदि कोई है, तो वह काव्य साधना ही है। पंत की भाव-चेतना महाकवि रबींद्रनाथ ठाकुर, महात्मा गांधी और श्री अरबिंदो घोष की रचनाओं से प्रभावित हुई। साथ ही कुछ मित्रों ने मार्क्सवाद के अध्ययन की ओर भी उन्हें प्रवृत्त किया और उसके विभिन्न सामाजिक-आर्थिक पक्षों को उन्होंने गहराई से देखा व समझा। 1950 में रेडियो विभाग से जुड़ने से उनके जीवन में एक ओर मोड़ आया। सात वर्ष उन्होंने 'हिन्दी चीफ प्रोड्यूसर' के पद पर कार्य किया और उसके बाद साहित्य सलाहकार के रूप में कार्यरत रहे।

युग प्रवर्तक कवि

सुमित्रनंदन पंत आधुनिक हिन्दी साहित्य के एक युग प्रवर्तक कवि हैं। उन्होंने भाषा को निखार और संस्कार देने, उसकी सामर्थ्य को उद्घाटित करने के अतिरिक्त नवीन विचार व भावों कों समृद्धि दी। पंत सदा ही अत्यंत सशक्त और ऊर्जावान कवि रहे हैं। सुमित्रनंदन पंत को मुख्यत: प्रकृति का कवि माना जाने लगा। लेकिन पंत वास्तव में मानव-सौंदर्य और आध्यात्मिक चेतना के भी कुशल कवि थे।

रचनाकाल

पंत का पल्लव, ज्योत्सना तथा गुंजन का रचनाकाल काल (1926-33) उनकी सौंदर्य एवं कला-साधना का काल रहा है। वह मुख्यत: भारतीय

सांस्कृतिक पुनर्जागरण की आदर्शवादिता से अनुप्राणिक थे। किंतु युगांत (1937) तक आते-आते बहिर्जीवन के खिंचाव से उनके भावात्मक दृष्टिकोण में परिवर्तन आए। पन्तजी की रचनाओं का क्षेत्र बहुविध और बहुआयामी है। आपकी रचनाओं सा संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है-

महाकाव्य

सुमित्रनन्दन पंत हस्तलिपि 'याद'

'लोकायतन' कवि सुमित्रनन्दन पन्त का महाकाव्य है। कवि की विचारधारा और लोक-जीवन के प्रति उसकी प्रतिबद्धता इस रचना में अभिव्यक्त हुई है। इस पर कवि को 'सोवियत रूस' तथा उत्तर प्रदेश शासन् से पुरस्कार प्राप्त हुआ है। पंत जी को अपने माता-पिता के प्रति असीम-सम्मान था। इसलिए उन्होंने अपने दो महाकाव्यों में से एक महाकाव्य 'लोकायतन' अपने पूज्य पिता को और दूसरा महाकाव्य 'सत्यकाम' अपनी स्नेहमयी माता को, जो इन्हें जन्म देते ही स्वर्ग सिधार गई, समर्पित किया है। अपनी माँ सरस्वती देवी को स्मरण करते हुए इन्होंने अपना दूसरा महाकाव्य 'सत्यकाम' जिन शब्दों के साथ उन्हें समर्पित किया है, वे द्रष्टव्य हैं-

मुझे छोड़ अनगढ़ जग में तुम हुई अगोचर,
भाव-देह धर लौटीं माँ की ममता से भर !
वीणा ले कर में, शोभित प्रेरणा-हंस पर,
साध चेतना-तंत्रि रसौ वै सः झंकृत कर
खोल हृदय में भावी के सौन्दर्य दिगंतर !

काव्य-संग्रह

'वीणा', 'पल्लव' तथा 'गुंजन' छायावादी शैली में सौन्दर्य और प्रेम की प्रस्तुति है। 'युगान्त', युगवाणी' तथा 'ग्राम्या' में पन्तजी के प्रगतिवादी और यथार्थपरक भावों का प्रकाशन हुआ है। 'स्वर्ण-किरण', 'स्वर्ण-धूलि', 'युगपथ', 'उत्तरा', 'अतिमा', तथा 'रजत-रश्मि' संग्रहों में अरविन्द-दर्शन का प्रभाव परिलक्षित होता है। इनके अतिरिक्त 'कला और बूढ़ा चाँद' तथा 'चिदम्बरा' भी आपकी सम्मानित रचनाएँ हैं। पन्तजी की अन्तर्दृष्टि तथा संवेदनशीलता ने जहाँ

उनके भाव-पक्ष को गहराई और विविधता प्रदान की हैं, वहीं उनकी कल्पना-प्रबलता और अभिव्यक्ति-कौशल ने उनके कला-पक्ष को सँवारा है।

रचनाएँ

सुमित्रनंदन पंत

चिदंबरा 1958 का प्रकाशन है। इसमें युगवाणी (1937-38) से अतिमा (1948) तक कवि की 10 कृतियों से चुनी हुई 196 कविताएं संकलित हैं। एक लंबी आत्मकथात्मक कविता आत्मिका भी इसमें सम्मिलित है, जो वाणी (1957) से ली गई है। चिदंबरा पंत की काव्य चेतना के द्वितीय उत्थान की परिचायक है। प्रमुख रचनाएं इस प्रकार हैं–

कविताएं

वीणा (1919)
ग्रंथि (1920)
पल्लव (1926)
गुंजन (1932)
युगांत (1937)
युगवाणी (1938)
ग्राम्या (1940)
स्वर्णकिरण (1947)
कविताएं
स्वर्णधूलि (1947)
उत्तरा (1949)
युगपथ (1949)
चिदंबरा (1958)
कला और बूढ़ा चाँद (1959)
लोकायतन (1964)
गीतहंस (1969)।

कहानियाँ

पाँच कहानियाँ (1938)

उपन्यास

हार (1960),
आत्मकथात्मक संस्मरण
साठ वर्ष–एक रेखांकन (1963)।

साहित्यिक विशेषताएँ

छायावाद को मुख्यत: 'प्रेरणा का काव्य' मानने वाले इस कोमल-प्राण कवि ने 'हार' नामक उपन्यास के लेखन से अपनी रचना-यात्रा आरंभ की थी, जो 'मुक्ताभ' के प्रणयन तक जारी रही। मुख्यत: कवि-रूप में प्रसिद्ध होने के अलावा ये 'प्रथम कोटि के आलोचक, विचारक और गद्यकार' थे। इन्होंने मुक्तक, लंबी कविता, गद्य-नाटिका, पद्य-नाटिका, रेडियो-रूपक, एकांकी, उपन्यास, कहानी इत्यादि जैसी विभिन्न विधाओं में अपनी रचनाएँ प्रस्तुत की हैं और लोकायतन तथा सत्यकाम जैसे वृहद महाकाव्य भी लिखे हैं। विधाओं की विविधता की दृष्टि से इनके द्वारा संपादित 'रूपाभ पत्रिका' (सन् 1938 ईस्वी) की संपादकीय टिप्पणियाँ और मधुज्वाल की भावानुवादाश्रित कविताएँ भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं हैं। आशय यह कि विभिन्न विधाओं में उपलब्ध इनके विपुल साहित्य को एक नातिदीर्घ रचना-संचयन में प्रस्तुत करना कठिन कार्य है। रचनाओं की विपुलता के साथ ही यह भी लक्ष्य करने योग्य है कि प्रकृति और नारी-सौंदर्य से रचनारंभ करनेवाले पंत जी मानव, सामान्य जन और समग्र मानवता की कल्याण-कामना से सदैव जुड़े रहे। इनकी मान्यता थी कि 'आने वाला मानव निश्चिय ही न पूर्व का होगा, न पश्चिम का।' ये सार्वभौम मनुष्यता के विश्वासी थे। अध्यात्म, अंतश्चेतना, प्रेम, समदिक् संचरण इत्यादि जैसा संकल्पनाओं से भावाकुल पंत के लेखन-चिन्तन का केन्द्र-बिन्दु हमेशा 'लोक' पक्ष ही रहा, जो लोकायतन के नामकरण से भी संकेतित होता है। पंत-काव्य का तृतीय चरण, जो 'नवीन सगुण' के नाम से चर्चित है और जिसे हम शुभैषणा-सदिच्छा का स्वस्ति-काव्य कह सकते हैं, इसी 'लोक' के मंगल पर केन्द्रित है।

सुमित्रानन्दन पंत हस्तलिपि 'नक्षत्र'

प्रकृति-प्रेमी कवि

'उच्छास' से लेकर 'गुंजन' तक की कविता का सम्पूर्ण भावपट कवि की सौन्दर्य-चेतना का काल है। सौन्दर्य-सृष्टि के उनके प्रयत्न के मुख्य उपादान हैं- प्रकृति, प्रेम और आत्म-उद्‌बोधन। अल्मोड़ा की प्राकृतिक सुषमा ने उन्हें बचपन से ही अपनी ओर आकृष्ट किया। ऐसा प्रतीत होता है जैसे माँ की ममता से रहित उनके जीवन में मानो प्रकृति ही उनकी माँ हो। उत्तर प्रदेश के अल्मोड़ा के पर्वतीय अंचल की गोद में पले बढ़े पंत जी स्वयं यह स्वीकार करते हैं कि उस मनोरम वातावरण का इनके व्यक्तित्त्व पर गंभीर प्रभाव पड़ा। कवि या कलाकार कहां से प्रेरणा ग्रहण करता है इस बारे में अपने विचार व्यक्त करते हुए पंत जी कहते हैं, संभवत: प्रेरणा के स्रोत भीतर न होकर अधिकतर बाहर ही रहते हैं। अपनी काव्य यात्रा में पन्त जी सदैव सौन्दर्य को खोजते नजर आते हें। शब्द, शिल्प, भाव और भाषा के द्वारा कवि पंत प्रकृति और प्रेम के उपादानों से एक अत्यंत सूक्ष्य और हृदयकारी सौन्दर्य की सृष्टि करते हैं, किंतु उनके शब्द केवल प्रकृति-वर्णन के अंग न होकर एक-दूसरे अर्थ की गहरी व्यंजना से संयोजित हैं। उनकी रचनाओं में छायावाद एवं रहस्यवाद का समावेश भी है। साथ ही शेली, कीट्स, टेनिसन् आदि अंग्रेजी कवियों का प्रभाव भी है। मेरे मूक कवि को बाहर लाने का सर्वाधिक श्रेय मेरी जन्मभूमि के उस नैसर्गिक सौन्दर्य को है जिसकी गोद में पलकर मैं बड़ा हुआ जिसने् छुटपन से ही मुझे अपने रूपहले एकांत में एकाग्र तन्मयता के रश्मिदोलन में झुलाया, रिझाया तथा कोमल कण्ठ वन-पखियों ने साथ बोलना कुहुकन सिखाया। पंतजी को जन्म के उपरांत ही मातृ-वियोग सहना पड़ा।

भाव पक्ष

पन्तजी के भाव-पक्ष का एक प्रमुख तत्त्व उनका मनोहारी प्रकृति चित्रण है। कौसानी की सौन्दर्यमयी प्राकृतिक छटा के बीच पन्तजी ने अपनी बाल-कल्पनाओं को रूपायित किया था। प्रकृति के प्रति उनका सहज आकर्षण उनकी रचनाओं के बहुत बड़े भाग को प्रभावित कि, हुए है। प्रकृति के विविध आयामों और भंगिमाओं को हम पन्त के काव्य में रूपांकित देखते हैं। वह मानवी-कृता सहेली है, भावोद्दीपिका है, अभिव्यक्ति का आलम्बन है और

अलंकृता प्रकृति-वधू भी है। इसके अतिरिक्त प्रकृति कवि पन्त के लिए उपदेशिका और दार्शनिक चिन्तन का आधार भी बनी है। कवि पन्त को सामान्यतया कोमल-कान्त भावनाओं और सौन्दर्य का कवि समझा जाता है, किन्तु जीवन के यथार्थों से सामना होने पर कवि में जीवन के प्रति यथार्थपरक और दार्शनिक दृष्टिकोण का विकास होता गया है। सर्वप्रथम पन्त मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित हुए, जिसका प्रभाव उनकी 'युगान्त', 'युगवाणी' आदि रचनाओं में परिलक्षित होता है। गाँधीवाद से भी आप प्रभावित दिखते हैं। 'लोकायतन' में यह प्रभाव विद्यमान है। महर्षि अरविन्द की विचारधारा का भी आप पर गहरा प्रभाव पड़ा। 'गीत-विहग' रचना इसका उदाहरण है। सौन्दर्य और उल्लास के कवि पन्त को जीवन का निराशामय विरूप-पक्ष भी भोगना पड़ा और इसकी प्रतिक्रिया 'परिवर्तन' नामक रचना में दृष्टिगत होती है-

अखिल यौवन के रंग उभार हड्डियों के हिलते कंकाल,
खोलता इधर जन्म लोचन मूँदती उधर मृत्यु क्षण-क्षण।

पन्तजी के काव्य में मानवतावादी दृष्टि को भी सम्मानित स्थान प्राप्त है। वह मानवीय प्रतिष्ठा और मानव-जाति के भावी विकास में दृढ़ विश्वास रखते हैं। 'द्रुमों की छाया' और 'प्रकृति की माया' को छोड़कर जो पन्त 'बाला के बाल-जाल' में 'लोचन उलझाने' को प्रस्तुत नहीं थे, वही मानव को विधाता की सुन्दरतम कृति स्वीकार करते हैं-

सुन्दर है विहग सुमन सुन्दर, मानव तुम सबसे सुन्दरतम।

वह चाहते हैं कि देश, जाति और वर्गों में विभाजित मनुष्य की केवल एक ही पहचान हो - मानव।

भाषा-शैली

कवि पन्त का भाषा पर असाधारण अधिकार है। भाव और विषय के अनुकूल मार्मिक शब्दावली उनकी लेखनी से सहज प्रवाहित होती है। यद्यपि पन्त की भाषा का एक विशिष्ट स्तर है फिर भी वह विषयानुसार परिवर्तित होती है। पन्तजी के काव्य में एकाधिक शैलियों का प्रयोग हुआ है। प्रकृति-चित्रण में भावात्मक, आलंकारिक तथा दृश्य विधायनी शैली का प्रयोग हुआ है। विचार-प्रधान तथा दार्शनिक विषयों की शैली विचारात्मक एवं विश्लेषणात्मक भी हो गई है। इसके अतिरिक्त प्रतीक-शैली का प्रयोग भी हुआ है। सजीव बिम्ब-विधान तथा ध्वन्यात्मकता भी आपकी रचना-शैली की विशेषताएँ हैं।

अलंकरण

पन्तजी ने परम्परागत एवं नवीन, दोनों ही प्रकार के अलंकारों का भव्यता से प्रयोग किया है। बिम्बों की मौलिकता तथा उपमानों की मार्मिकता हृदयहारिणी है। रूपक, उपमा, सांगरूपक, मानवीकरण, विशेषण-विपर्यय तथा ध्वन्यर्थ-व्यंजना का आकर्षक प्रयोग आपने किया है।

छंद

पन्तजी ने परम्परागत छन्दों के साथ-साथ नवीन छंदों की भी रचना की है। आपने गेयता और ध्वनि-प्रभाव पर ही बल दिया है, मात्राओं और वर्णों के क्रम तथा संख्या पर नहीं। प्रकृति के चितेरे तथा छायावादी कवि के रूप में पन्तजी का स्थान निश्चय ही विशिष्ट है। हिन्दी की लालित्यपूर्ण और संस्कारित खड़ी बोली भी पन्तजी की देन है। पन्तजी विश्व-साहित्य में भी अपना स्थान बना गए हैं।

पुरस्कार

सुमित्रनंदन पंत को पद्म भूषण (1961) और ज्ञानपीठ पुरस्कार (1968) से सम्मानित किया गया। कला और बूढ़ा चाँद के लिए साहित्य अकादमी पुरस्कार, लोकायतन पर 'सोवियत लैंड नेहरू पुरस्कार' एवं 'चिदंबरा' पर इन्हें 'भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार' प्राप्त हुआ।

संग्रहालय

उत्तराखंड राज्य के कौसानी में महाकवि पंत की जन्म स्थली को सरकारी तौर पर अधिग्रहीत कर उनके नाम पर एक राजकीय संग्रहालय बनाया गया है, जिसकी देखरेख एक स्थानीय व्यक्ति करता है। इस स्थल के प्रवेश द्वार से लगे भवन की छत पर महाकवि की मूर्ति स्थापित है। वर्ष 1990 में स्थापित इस मूर्ति का अनावरण वयोवृद्ध साहित्यकार तथा इतिहासवेत्ता पंडित नित्यानंद मिश्र द्वारा उनके जन्म दिवस 20 मई को किया गया था। महाकवि सुमित्रनंदन पंत का पैत्रक ग्राम यहां से कुछ ही दूरी पर है, परन्तु वह आज भी अनजाना तथा तिरस्कृत है। संग्रहालय में महाकवि द्वारा उपयोग में लायी गयी दैनिक वस्तुएँ यथा शॉल, दीपक, पुस्तकों की अलमारी तथा महाकवि को समर्पित कुछ सम्मान-पत्र, पुस्तकें तथा हस्तलिपि सुरक्षित हैं।

मृत्यु

कौसानी चाय बागान के व्यवस्थापक के परिवार में जन्मे महाकवि सुमित्रनंदन पंत की मृत्यु 28 दिसम्बर, 1977 को इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश में हुई।

विचारधारा

उनका संपूर्ण साहित्य 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' के आदर्शों से प्रभावित होते हुए भी समय के साथ निरंतर बदलता रहा है। जहां प्रारंभिक कविताओं में प्रकृति और सौंदर्य के रमणीय चित्र मिलते हैं वहीं दूसरे चरण की कविताओं में छायावाद की सूक्ष्म कल्पनाओं व कोमल भावनाओं के और अंतिम चरण की कविताओं में प्रगतिवाद और विचारशीलता के। उनकी सबसे बाद की कविताएं अरविंद दर्शन और मानव कल्याण की भावनाओं से ओतप्रोत हैं। पंत परंपरावादी आलोचकों और प्रगतिवादी तथा प्रयोगवादी आलोचकों के सामने कभी नहीं झुके। उन्होंने अपनी कविताओं में पूर्व मान्यताओं को नकारा नहीं। उन्होंने अपने ऊपर लगने वाले आरोपों को 'नम्र अवज्ञा' कविता के माध्यम से खारिज किया। वह कहते थे 'गा कोकिला संदेश सनातन, मानव का परिचय मानवपन।'

स्मृति विशेष

सन् 2015 में पन्त जी की याद में एक डाक-टिकट जारी किया गया था।

उत्तराखण्ड में कुमायूँ की पहाड़ियों पर बसे कौसानी गांव में, जहाँ उनका बचपन बीता था, वहां का उनका घर आज 'सुमित्र नंदन पंत साहित्यिक वीथिका' नामक संग्रहालय बन चुका है। इस में उनके कपड़े, चश्मा, कलम आदि व्यक्तिगत वस्तुएं सुरक्षित रखी गई हैं। संग्रहालय में उनको मिले ज्ञानपीठ पुरस्कार का प्रशस्तिपत्र, हिंदी साहित्य सम्मेलन द्वारा मिला साहित्य वाचस्पति का प्रशस्तिपत्र भी मौजूद है। साथ ही उनकी रचनाएं लोकायतन, आस्था आदि कविता संग्रह की पांडुलिपियां भी सुरक्षित रखी हैं। कालाकांकर के कुंवर सुरेश सिंह और हरिवंश राय बच्चन से किये गये उनके पत्र व्यवहार की प्रतिलिपियां भी यहां मौजूद हैं।

संग्रहालय में उनकी स्मृति में प्रत्येक वर्ष पंत व्याख्यान माला का आयोजन होता है। यहाँ से 'सुमित्रानंदन पंत व्यक्तित्त्व और कृतित्त्व' नामक पुस्तक भी प्रकाशित की गई है। उनके नाम पर इलाहाबाद शहर में स्थित हाथी पार्क का नाम 'सुमित्रानंदन पंत बाल उद्यान' कर दिया गया है।

कविवर सुमित्रा नंदन पंत छायावादी काव्यधारा के सर्वथा अनूठे और विशिष्ट कवि हैं।सुमित्रा नंदन पंत जी को छायावाद का चौथा स्तंभ माना जाता है। दूसरे शब्दों में कविवर सुमित्रा नंदन पंत का छायावादी काव्यधारा को संवारने बनाने में अद्‌भुत योगदान है। छायावादी काव्यधारा को एक नई गति देने में सुमित्रा नंदन पंत की भूमिका उल्लेखनीय रही है।

सुमित्रानंदन पंत के काव्य की सर्वोपरि विशेषता यह है कि विषय वस्तु की भिन्नता होने पर भी उनमें कल्पना की स्वच्छंद उड़ान, प्रकृति के प्रति आकर्षण और प्रकृति एवं मानव जीवन के कोमल और सरस पक्षों के प्रति अटूट आग्रह है। अपने काव्य में कल्पना के महत्व को बताते हुए सुमित्रानंदन पंत ने लिखा है–

"मैं कल्पना के सत्य को सबसे बड़ा सत्य मानता हूं, मेरी कल्पना को जिन-जिन विचारधाराओं से प्रेरणा मिली है, उन सब का समीकरण करने की मैंने चेष्टा की है। मेरा विचार है कि " वीणा " से लेकर " ग्राम्या " तक अपनी सभी रचनाओं में मैंने अपनी कल्पना को ही वाणी दी है। "

सुमित्र नंदन पंत जी का मानना है कि जब उन्होंने कविता लिखना आरंभ किया था, तब वह काव्य को मानव जीवन में क्या उपयोगिता है नहीं जानते थे। और वह यह कहते थे कि ना मैं यही जानता था कि उस समय काव्य जगत में कौन सी शक्तियां कार्य कर रही थीं। जैसे एक दीपक दूसरे दीपक को जलाता है उसी प्रकार द्विवेदी युग के कवियों की कृतियों ने उनके हृदय को अपने सौंदर्य से स्पर्श किया और उसमें एक प्रेरणा की शिखा जगा दी।

सुमित्र नंदन पंत का जन्म उत्तर भारत के जनपद का कसौनी में हुआ। कसौनी जनपद प्रकृति की सुंदरता के बीच बसा हुआ है। कसौनी की उन जुगनुओं की जगमगाती हुई एकांत घाटी का अवाक् सौंदर्य, उनकी रचनाओं में अनेक विस्मय–भरी और भावनाओं में प्रकट हुआ है–

"उस फैली हरियाली में
कौन अकेली खेल रही मां,
वह अपनी वय वाली में?"

उषा, संध्या, फूल, कपोल, कलरव, औसो के वन और नदी निर्झर उनके एकांकी किशोर मन को सदैव अपनी ओर आकर्षित करते रहते हैं, और सौंदर्य के अनेक सद्यःस्फूर्त उपकरणों से प्रकृति की मनोरम मूर्ति रच कर उनकी कल्पना समय-समय उसे काव्य मंदिर में प्रतिष्ठित करती रहती है। उन्होंने प्रकृति

वर्णन की प्रेरणा स्रोत कसौनी का वर्णन भी अपने एक कवि की पंक्ति में बड़े ही मनोरम तरीके से किया है–

"आरोही हिमगिरी चरणों पर
रहा ग्राम वह मरकत मणिकण
श्रद्धानत–आरोहण के प्रति
मुग्ध प्रकृति का आत्म–समर्पण
सांझ–प्रात स्वर्णिम शिखरों से
द्वाभायें बरसाती वैभव
ध्यानमग्न नि:स्वर निसर्ग निज
दिव्य रूप का करता अनुभव। "

सुमित्रानंदन पंत का प्रकृति चित्रण

छायावादी कविता की एक प्रमुख विशेषता रही है कि व्यक्तिगत स्वतंत्रता इसके लिए इस धारा के कवियों ने अपनी आत्मनिर्भरव्यक्ति के लिए स्वच्छंद कल्पना और प्रकृति का सहारा लिया। पंत के काव्य में प्रकृति के प्रति अपार प्रेम और कल्पना की ऊंची उड़ान है। सुमित्र नंदन पंत को अपने परिवेश से ही प्रकृति प्रेम प्राप्त हुआ है। पंत के काव्य में प्रकृति के प्रति अपार प्रेम और कल्पना की ऊंची उड़ान है।

सुमित्र नंदन पंत को अपने परिवेश से ही प्रकृति प्रेम प्राप्त हुआ है अपने प्रकृति परिवेश के विषय में उन्होंने लिखा है–"कविता की प्रेरणा मुझे सबसे पहले प्रकृति निरक्षण से मिली है, जिसका श्रेय मेरी जन्मभूमि कुमाचल प्रदेश को है कवि जीवन से पहले भी मुझे याद है मैं घंटों एकांत में बैठा प्रकृति दृश्य को एकटक देखा करता था।

"यह प्राकृतिक परिवेश किसी अन्य छायावादी कवि को नहीं मिला था सुमित्र नंदन पंत का यह साहचर्य प्रकृति प्रेम उन की प्रथम रचना " वीणा " से लेकर "लोकायतन" नामक महाकाव्य तक समान रूप से देखा जा सकता है। अपने कवि जीवन के आरंभिक दौर में पंत प्राकृतिक सौंदर्य से इतने अभिभूत थे कि नारी सौंदर्य के आकर्षण को भी उसके सम्मुख न्यून मान लिया था–

"छोड़ द्रुमों की मृदु छाया
तोड़ प्रकृति से भी माया

बाले तेरे बाल–जाल में
उलझा दूं में कैसे लोचन ?

सुमित्र नंदन पंत के यहां प्रकृति निर्जीव जड़ वस्तु होकर एक साकार और सजीव सत्ता के रूप में उपस्थित हुई है, उसका एक–एक अणु प्रत्येक उपकरण कभी मन में जिज्ञासा उत्पन्न करता है संध्या, प्रातः, बादल, वर्षा, वसंत, नदी, निर्झर, भ्रमर, तितली, पक्षी आदि सभी उसके मन को और को आंदोलित करते हैं। यहां संध्या का एक जिज्ञासा पूर्ण चित्र दर्शनीय है–

"कौन तुम रूपसी कौन
व्योम से उतर रही चुपचाप
छिपी निज माया में छवि आप
सुनहला फैला केश कलाप
मंत्र मधुर मृदु मौन,

इस पूरी कविता में संध्या को एक आकर्षक युवती के रूप में मौन मंथर गति से पृथ्वी पर पदार्पण करते हुए दिखा कर कवि ने संध्या का मानवीकरण किया है। प्रकृति का यह मानवीकरण छायावादी काव्य की एक प्रमुख विशेषता है। चांदनी, बादल, छाया, ज्योत्स्ना, किरण आदि प्रकृति से संबंधित अनेक विषयों पर सुमित्र नंदन पंत ने स्वतंत्र रूप से कविताएं लिखी हैं, इनमें प्रकृति के दुर्लभ मनोरम चित्र प्रस्तुत हुए हैं।

सुमित्र नंदन पंत की बहुत सी प्रकृति संबंधी कविताओं में उनकी जिज्ञासा भावना के साथ ही रहस्य भावना भी व्यक्त हुई है। "प्रथम रश्मि", "मौन निमंत्रण" आदि जैसे बहुत सी कविताएं तो मात्र जिज्ञासा भाव को व्यक्त करती है। इसके लिए "प्रथम रश्मि" का एक उदाहरण पर्याप्त होगा–

" प्रथम रश्मि का आना रंगीनी
तूने कैसे पहचाना
कहां–कहां है बाल विहंगिणी
पाया तूने यह गाना। "

इसी तरह "मौन निमंत्रण" में भी कवि की किशोरावस्था की जिज्ञासा ही प्रमुख है, लेकिन सुमित्र नंदन पंत की प्रकृति से संबंधित ऐसी बहुत सी कविताएं भी है जिनमें उनके गहन एवं सूक्ष्म निरीक्षण के साथ ही इनकी आध्यात्मिक मान्यता भी व्यक्त हुई है। इस दृष्टि से "नौका विहार", "एक तारा" आदि कविताएं विशेष उल्लेखनीय है। यहां उदाहरण के लिए संध्या का एक चित्र है–

" गंगा के जल चल में निर्मल कुम्हला किरणों का रक्तोपल
है मूंद चुका अपने मृदु दल
लहरों पर स्वर्ण रेखा सुंदर पड़ गई नील, ज्यों अधरों पर
अरुणाई प्रखर शिशिर से डर। "

यहां गंगा के जल में रक्तोपल (लाल कमल) के समान सूर्य के बिंब का डूबना और गंगा की लहरों पर संध्या की सुनहरी आभा का धीरे-धीरे नीलिमा में परिवर्तित होना आदि कवि के सूक्ष्म प्रकृति निरीक्षण का और उनकी गहन रंग चेतना का परिचायक है। लेकिन कविता के अंत में कवि ने एक तारे के बाद बहुत से तारों के उदय को आत्मा और यह जग दर्शन कह कर

" एकोहम बहुस्यामि " की दार्शनिक मान्यता को भी प्रतिपादित कर दिया है। इसी तरह "नौका विहार" में भी कवि ने ग्रीष्मकालीन गंगा का एक तापस बाला के रूप में भावभीना चित्रण करते हुए अंत में जगत की शाश्वतता का स्पष्ट संकेत दिया है।

पंत का लगाओ प्रकृति के कोमल और मनोरम स्वरूप के प्रति ही अधिक रहा है, लेकिन कभी कभार इनकी दृष्टि यथार्थ से प्रेरित होकर प्रकृति के कठोर रूप की और भी गई है। वर्षा कालीन रात्रि का एक चित्र है–

"पपीहों की यह पीन पुकार, निर्झरों की भारी झरझर
झींगुरों की झीनी झंकार, घनो की गुरु गंभीर घहर
बिंदुओं की छनती झनकार, दादूरों के वे दूहरे स्वर। "

इसी प्रकार वायु वेग से झकझोर गए भीम आकार नीम के वृक्ष की स्थिति को कवि ने इस प्रकार प्रस्तुत किया है–

" झूम-झूम झुक-झुक कर, भीम नीम तरु निर्भर
सिहर-सिहर थर-थर-थर करता सर-मर चर-मर। "

अपनी "कलरव" शीर्षक कविता में पंत जी ने संध्या का यथार्थ किंतु अत्यंत भावप्रवण चित्र इस प्रकार प्रस्तुत किया है–

बांसों का झुरमुट/संध्या का छुटपुट,
है चहक रही चिड़िया टी वी टी टी टूट-टूट
ये नाम रहे निज घर का मग
कुछ भ्रमजीवी धर डगमग डग
माटी है जीवन भारी पग। "

यहां बांसों के झुरमुट में चहकती हुई चिड़ियों और भारी पग तथा उदास मन से अपने घरों को लौटने वाले मजदूरों की विरोधपूर्ण स्थिति के माध्यम से कवि ने संध्या का अत्यंत व्यंजक स्वरूप प्रस्तुत किया है। प्रकृति विषयक दृष्टिकोण को प्रकट करते हुए पंत जी आधुनिक कवि के पर्यायलोचन में लिखते हैं–

" साधारणता प्रकृति के सुंदर रुप ही ने मुझे अधिक लुभाया है।" स्पष्ट है कि पंत को प्रकृति का सुंदर रूप ही अत्यधिक आकर्षक लगा है और उसी का काव्य में उपयोग भी किया है। प्रकृति का सुंदर रूप ग्रहण करने के कारण ही पंत जी में मनन एवं चिंतन की शक्ति आई और वे हिंदी साहित्य को स्वर्ण काव्य प्रदान कर सके। यदि उन्हें बाढ़ और उल्का की प्रकृति से लगाव होता है तो, निश्चय ही वह निराशावादी होते।

पंत जैसा स्वर्ण काव्य किसी निराश मानस से अद्‌भुत नहीं हो सकता था, यह सत्य है कि प्रकृति का उग्र रूप मुझे कम रुचिता है यदि में संघर्ष प्रिय अथवा निराशावादी होता तो " नेचर रेड इन टूथ एंड कलाऊ" वाला कठोर रूप जो जीव विज्ञान का सत्य है मुझे अपनी और अधिक खींचता है। पंत जी के काव्य में प्रकृति चित्रण विभिन्न रूपों में मिलता है।

आलंबन रूप

जब प्रकृति में किसी प्रकार की भावना का अध्याहार न कर प्रकृति का ज्यों का क्यों वर्णन किया जाता है। जो वह आलंबन रूप होता है, पंत जी के काव्य में प्रकृति चित्रण का यह रूप पर्याप्त मिलता है–

" गिरि का गौरव गाकर हग्ग फर-फर मंद में नस-नस उत्तेजित कर
मोती की लड़ियों से सुंदर झड़ते हैं झाग भरे निर्झर। "

उद्दीपन रूप

प्रकृति व्यक्ति की भावनाओं को भी उदीप्त करती है। उसका वह उद्दीपन रूप होता है उस रूप में प्रकृति का वर्णन बहुत ही अधिक हुआ है विशेषता विरह काव्य में।

अलंकारिक रूप

इस रूप में प्रकृति का उपयोग अलंकारों के प्रयोग के लिए किया जाता है–

" मेरा पावस ऋतु जीवन
मानस-सा उमड़ा अपार मन
गहरे धुंधले धुले सांवले
मेघों से मेरे भरे नयन। "

पृष्ठभूमि के रूप में

भावनाओं को अधिक प्रभुविष्णु बनाने के लिए प्रकृति का पृष्ठभूमि के रूप में वर्णन किया जाता है। पंत काव्य में ऐसे असंख्य पद है जहां इस रूप का प्रयोग किया गया है "ग्रंथि एक तारा", "नौका विहार" आदि कविताएं इसी रूप के उदाहरणार्थ प्रस्तुत की जा सकती हैं।

रहस्यात्मक रूप

प्रकृति में रहस्य भावना का आरोप करना छायावाद की प्रमुख विशेषता है। अंत में भी यह भावना उपलब्ध होती है–

" क्षुब्ध जल शिखरों को जब बात सिंधु में मथकर फेनाकर
बुलबुलों का व्याकुल संसार बना, बिथुरा देनी अज्ञात
उठा तब लहरों से कर कौन न जाने मुझे बुलाता मौन। "

दार्शनिक उद्‌भावना प्रकृति

के माध्यम से गंभीर दार्शनिक विचारों की अभिव्यक्ति भी की जाती है सुमित्र नंदन पंत जी की " नौका विहार" और "एक तारा" आदि कविताएं ऐसी ही है। "एक तारा" के अंत में सुमित्र नंदन पंत ने इन पंक्तियों में दार्शनिक उद्‌भावना की है–

जगमग जगमग नभ का आंगन
लग गया कुंद कलियों से धन
वह आत्म और यह जग-दर्शन। "

मानवीकरण

प्रकृति में चेतन सत्ता का आरोपण ही मानवीकरण कहलाता है। छायावादी काव्य में प्रकृति को एक चेतन सत्ता के रूप में ही देखा जाता है, जड़ के रूप

में नहीं। छायावाद प्रकृति के इस रूप को विशेषत: अपनाकर चला है। "संध्या कविता में कवि संध्या को नव युवती के रूप में चित्रित किया है–

" कहो तुम रूपसी कौन ?
व्योम से उतर रही चुपचाप
छिपी नीज छाया छबी में आप
सुनहला फैला केश कलाप
मधुर, मंथर, मृदु, मौन। "

नारी रूप

प्रकृति का कोमल रूप ग्रहण करने के कारण ही पंत जी ने प्रकृति को नारी रूप में देखा है। "चांदनी " कविता में वह चांदनी का वर्णन किस प्रकार करते हैं–

" नीले नभ के शतदल पर वह बैठी शारद-हंसिन्ी
मृदु करतल पर शशि मुख धर निरब अनिमिय एकाकिनी। "

उपदेशात्मक

उपदेश के लिए प्रकृति का प्रयोग प्राचीन काल से होता आ रहा है। गोस्वामी तुलसीदास के वर्षा ऋतु वर्णन में यही प्रणाली को अपनाई गई है–

"बूंद अघात सहे गिरी कैसे खल के वचन संत सहे जेसे। "

निष्कर्ष

पंत के काव्य में प्रकृति के विभिन्न रूप मिलते हैं, जो छायावादी काव्य की विशेषता है। प्रकृति के प्रति सुकुमार दृष्टिकोण पंत जी की अपनी निजी विशेषता है। पंडित जी छायावादी कवि थे अत: छायावादी काव्य चेतना का संघर्ष मध्ययुगीन निर्मम निर्जीव जीवन परिपाटियों से था जो कुरूप छाया तथा घिनौनी काई की तरह युग मानस के दर्पण पर छाई हुई थी।

और शूद्र जटिल नैतिक सांप्रदायिकता के रूप में आकाश लता की तरह लिपट कर मन में आतंक जमाए हुई थी। दूसरा संघर्ष छायावादी चेतना का था।

उपनिषदों के दर्शन के पुनर्जागरण के युग में उनका ठीक-ठीक अभिप्राय ग्रहण करने के वाक्य का आत्म प्राण विद्या अविद्या शाश्वत अनंत अक्षर अक्षर सत्य आधी मूल्य एवं प्रतीकों का अर्थ समझ कर उन्हें युग मानस का उपयोगी

अंग बनाना और वैज्ञानिक दृष्टिकोण से उनके बाहरी विरोधियों को सुलझा कर उनमें सामंजस्य बिठाना।

यह सब अत्यंत गंभीर और आवश्यक समस्याएं थीं, जिनके भूलभुलैया से बाहर निकलकर कृतिकार को मुख्य रूप से सृजनकर्ता था। सदियों से निष्क्रिय विशेषण

एवं जीवन विमुख लोकमानस को आशा सौंदर्य जीवन प्रेम श्रद्धा अवस्था आदि का भाव काव्य देकर उस में नया प्रकाश उड़ेलना था। छायावाद मुख्यता प्रेरणा का काव्य रहा है और इसलिए वह कल्पना प्रधान भी रहा।

6

जानकीवल्लभ शास्त्री

आचार्य जानकीवल्लभ शास्त्री (5 फरवरी 1916 - 07 अप्रैल, 2011) हिंदी व संस्कृत के कवि, लेखक एवं आलोचक थे। उन्होने 2010 में पद्मश्री सम्मान लेने से मना कर दिया था। इसके पूर्व 1994 में भी उन्होने पद्मश्री नहीं स्वीकारी थी।

वे छायावादोत्तर काल के सुविख्यात कवि थे। उत्तर प्रदेश सरकार ने उन्हें भारत भारती पुरस्कार से सम्मानित किया था। आचार्य का काव्य-संसार बहुत ही विविध और व्यापक है। वे थोड़े-से कवियों में रहे हैं, जिन्हें हिंदी कविता के पाठकों से बहुत मान-सम्मान मिला है। प्रारंभ में उन्होंने संस्कृत में कविताएँ लिखीं। फिर महाकवि निराला की प्रेरणा से हिंदी में आए।

जानकी वल्लभ शास्त्री हिंदी साहित्य के एक बहुआयामी साहित्यकार रहे हैं। ऋषि तुल्य इस साहित्यकार की काव्य रचनाएं हिंदी साहित्य के परिदृश्य पर इतनी छाई हुई हैं कि उनके जीवन काल में ही "कवि दिवस" के रूप में उनका जन्मदिन मनाया जाने लगा था। आज बेशक वे सशरीर हमारे बीच नहीं हैं, किंतु उनके गीत हमें प्रेरणा और संबल प्रदान करते हैं। इसीलिए उनके एक समालोचक ने ठीक ही कहा है कि शास्त्री जी के गीत गीत नहीं, गीता हैं, कि वे शब्द नहीं, मंत्र लिखते हैं।

जानकी वल्लभ का जन्म 5,फरवरी,1916 को गया (बिहार) में बसे एक गांव, मैगरा में हुआ था और उनका निधन 95 वर्ष की अवस्था में 7,अप्रेल,1911

में मुजफ्फरपुर में हुआ था। उन्होंने अपने लम्बे जीवन काल में हिंदी साहित्य की कई पीढियां देखीं और कई आंदोलनों के वे दृष्टा रहे। किंतु वे कभी किसी आंदोलन से जुड़े नहीं. हर आंदोलन के प्रतिभावान कवि अवश्य रहे। वे छायावादोत्तर काल के विख्यात कवि थे। उत्तरप्रदेश सरकार से उन्हें भारत-भारती सम्मान से पुरस्कृत किया गया था। उन्होंने दो बार भारत सरकार के पद्मश्री सम्मान को अस्वीकार किया। एक बार 1994 में और दूसरी बार अपने देहांत के एक-सवा साल पहले 26 जनवरी 2010 में। उन्होंने इसे "मजाक" कहकर अस्वीकार कर दिया और कहा कि इसके योग्य अब उनके शिष्य अधिक हैं।

शास्त्री जी का काव्य संसार बहुत विविध और व्यापक है। आरम्भ में उन्होंने संस्कृत में कविताएं लिखीं। उनका संस्कृत काव्य संग्रह "काकली" नाम से प्रकाशित हुआ था। "काकली" को पढ़कर महाकवि निराला इसकी गीतात्मकता से इतने प्रभावित हुए कि वे युवक जानकी वल्लभ से स्वयं ही मिलने चले गए और हिंदी में गीत लिखने के लिए उन्हें प्रेरित किया। निराला की यही प्रेरणा जानकी वल्लभ को हिंदी साहित्य में ले आई और यहां उन्होंने निराला की ही ऊँचाई को स्पर्श किया। वे पूरी सदी में एकमात्र ऐसे कवि रहे जिन्हें निराला के समकक्ष रखा जा सकता है। शास्त्रीजी कहा करते थे कि निराला की प्रसिद्ध कविता "जुहूकी कली" और स्वयं उनका जन्म एक ही वर्ष हुआ–यानी, 1016 में।

गीत, गजलों, और कविताओं के लिए तो जानकी वल्लभ शास्त्री भली-भाँति जाने ही जाते हैं, किंतु उन्होंने काव्य के क्षेत्र में कुछ प्रयोग भी कि, उन्होंने छंद-बद्ध काव्य कथाएँ लिखीं. उन्होंने महाकाव्य और गीत-नाट्य रचे. सात खंडों में उनका महाकाव्य "राधा" आया उनकी तीन संगीतकाएँ (गीत-नाट्य) प्रकाशित हुईं–"पाषाणी", "तमसा", और "इरावती" ये सभी उनके काव्य व्यक्तित्त्व को नई ऊँचाई देते हैं। काव्य से इतर उन्होंने उपन्यास भी लिखे और कहानियाँ भी। ललित निबंधों पर अपनी कलम चलाई और संस्मरण भी लिखे। जानकी वल्लभ शास्त्री की आलोचनात्मक कृतियाँ भी हैं। और तो और व्यंग्य कथाएँ भी उन्होंने अपने पाठकों को परोसीं।

शास्त्री जी ने नि:संदेह कई विधाओं में लिखा किंतु उनका सर्वोत्तम रूप हमें गीतों और गजलों में ही दिखाई देता है। "अवंतिका" उनका सर्वश्रेष्ठ गीत संग्रह है। वे जब-जब विहवल होकर गीतों को गाते थे तो श्रोता भी उनके साथ उतने ही भावुक हो जाते थे। उनकी कविताओं में हमें कई स्वर मिलते हैं। उन्होंने

अपना लेखन भारत के स्वतंत्रता आंदोलन के समय से आरम्भ किया था। तब की उनकी कविताओं में हमें स्वतंत्रता की ललक के साथ-साथ आजादी का हेतु संघर्ष का आहवान मिलता है। सारा देश जो दासता की रूढ़िवादी निद्रा में सोया हुआ था, उसे उन्होंने जगाने का काम किया। "जागो निद्रा-तंत्र के कर बिके हुए बेमोल"। उनका संदेश साफ है–" मत डरो किसी से और न कभी डराओ/सिर झुकाकर उन्नत हृदय बनाओ।"

आचार्य शास्त्री की कविताएँ भारत के सनातन मूल्यों को पुनर्स्थापित करती हैं। वे अंधविश्वासों के अंधकार को चीरती हुई प्रकाशस्तम्भ का कार्य करती हैं। "ज्योति प्रपात झरो हे तम संघात पर/आत्मा की शुचिता कलुषित चित गार पर !" ये आस्था और विश्वास की कविताएँ हैं। आस्तिकता को बल देती हुई, ये "सुर के सुमेरु पर लय की ज्योति" बिखेरती दिखाई देती हैं। शास्त्री जी की काव्यभाषा अपने विश्वास पर अटल है।

"हाँ मेरा जीव यज्ञ/इसे दुनिया नादानी कहे, कहे/मैं गाऊँ तेरा मंत्र समझ/जग मेरी वाणी कहे, कहे !" अपने गीतों में जानकी, वल्लभ शास्त्री अद्वितीय हैं। उनके गीतों में लयात्मकता देखते ही बनती है। यह लय चाहे जिंदगी की हो या वेदना की। अनवरत उनके गीतों में यह प्रवाहित हुई है।–

जिंदगी की कहानी रही अनकही
दिन गुजरते गए, साँस चलती रही
वेदना अश्रु पानी बनी, बह गई
धूप तपती रही, छाँह चलती रही।

शास्त्री जी के कुछ गीत इस बात में अनोखे हैं कि वे गीत धर्म का निर्वाह करते हुए और गीत की कोमलता को साधते हुए अपने समय का व्यंग्य बड़े सहज ढंग से अभिव्यक्त कर जाते हैं। आज स्थिति यह है कि वे लोग जो जीवन-मूल्यों को धता बताते हैं, हमारे समाज के निर्देशक बने बैठे हैं, जिनके कार्य देखकर शर्म आती है, वे ही उपदेश दे रहे हैं, जिनका अहंकार सातवें आसमान पर है, वे शील और विनय को परिभाषित कर रहे हैं -

कुपथ पथ दौड़ता जो/पथ निर्देशक वह है
लाज लजाती जिसकी कृति से/धृति उपदेशक वह है
मूर्त दंभ गढ़ने उठता है/शील विनय परिभाषा
मृत्यु रक्त मुख से देता/जन को जीवन की आशा ...
जनता धरती पर बैठी है/वह मंच पर खड़ा है
जो जितना दूर मही से/उतना वही बड़ा है

शास्त्रीजी ने समय की पीड़ा को समझा है। नारी की दुर्दशा पर वे चिंतित हैं, प्रकृति का शोषण और धरती का विखंडन उन्हें मंजूर नहीं है। हमारे तथाकथित रहनुमाओं की दुमुही बातों से वे दु:खी हैं। मेघ गीत के बहाने वे कहते हैं–"ऊपर ऊपर पी जाते हैं, जो पीने वाले हैं/ऐसे भी जीते हैं, जो जीने वाले हैं।" ऐसा नजारा देखकर "मिट्टी का माथा" ठनकता है–"छुट्टे हाथ कहाँ पर इससे/छुटकारा जी का/दिल पर पड़ती चोट/ठनकता माथा मिट्टी का।'

शास्त्रीजी के गीतों का प्राण उनकी लयात्मकता और मूल्य-चेतना है। व्यंग्य और कटाक्ष करते हुए भी जानकीवल्लभ ने न तो कभी गीतों की लय से समझौता किया और न ही कद्रों का अवमूल्यन किया। अपने समय पर पैनी निगाह रखने वाले इस कवि ने परम्पराओं के प्रति सम्मान रखते हुए समाज की प्रगति का स्वप्न देखा देखा था।

कविता के क्षेत्र में उन्होंने कुछ सीमित प्रयोग भी कि, और सन् 40 के दशक में कई छंदबद्ध काव्य-कथाएँ लिखीं, जो 'गाथा नामक उनके संग्रह में संकलित हैं। इसके अलावा उन्होंने कई काव्य-नाटकों की रचना की और 'राधा जैसा सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य रचा। परंतु शास्त्री की सृजनात्मक प्रतिभा अपने सर्वोत्तम रूप में उनके गीतों और गजलों में प्रकट होती है।

इस क्षेत्र में उन्होंने नए-नए प्रयोग कि, जिससे हिंदी गीत का दायरा काफी व्यापक हुआ। वैसे, वे न तो नवगीत जैसे किसी आंदोलन से जुड़े, न ही प्रयोग के नाम पर ताल, तुक आदि से खिलवाड़ किया। छंदों पर उनकी पकड़ इतनी जबरदस्त है और तुक इतने सहज ढंग से उनकी कविता में आती है कि इस दृष्टि से पूरी सदी में केवल वे ही निराला की ऊंचाई को छू पाते हैं।

26 जनवरी 2010 को भारत सरकार ने उन्हें पद्मश्री से सम्मानित किया किन्तु इसे शास्त्रीजी ने अस्वीकार कर दिया। सात अप्रैल 2011 को मुजफ्फरपुर के निराला निकेतन में जानकीवल्लभ शास्त्री ने अंतिम सांस ली।

साहित्य सर्जना

काव्य संग्रह - बाललता, अंकुर, उन्मेष, रूप-अरूप, तीर-तरंग, शिप्रा, अवन्तिका, मेघगीत, गाथा, प्यासी-पृथ्वी, संगम, उत्पलदल, चन्दन वन, शिशिर किरण, हंस किंकिणी, सुरसरी, गीत, वितान, धूपतरी, बंदी मंदिरम्ध

महाकाव्य - राधा

संगीतिका - पाषाणी, तमसा, इरावती

नाटक - देवी, जिन्दगी, आदमी, नील-झील

उपन्यास - एक किरण–सौ झांइयां, दो तिनकों का घोंसला, अश्वबुद्ध, कालिदास, चाणक्य शिखा (अधूरा)

कहानी संग्रह - कानन, अपर्णा, लीला कमल, सत्यकाम, बांसों का झुरमुट

ललित निबंध - मन की बात, जो न बिक सकीं

संस्मरण -अजन्ता की ओर, निराला के पत्र, स्मृति के वातायन, नाट्य सम्राट पृथ्वीराज कपूर, हंस-बलाका, कर्म क्षेत्रे मरु क्षेत्र, अनकहा निराला

समीक्षा - साहित्य दर्शन, त्रयी, प्राच्य साहित्य, स्थायी भाव और सामयिक साहित्य, चिन्ताधारा

संस्कृत काव्य - काकली

गजल संग्रह - सुने कौन नगमा

जानकी वल्लभ शास्त्री प्रसिद्ध कवि थे। उन्हें उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा 'भारत भारती पुरस्कार' से सम्मानित किया गया था। वे उन थोड़े-से कवियों में रहे, जिन्हें हिंदी कविता के पाठकों से बहुत मान-सम्मान मिला। आचार्य जानकी, वल्लभ शास्त्री का काव्य संसार बहुत ही विविध और व्यापक है। प्रारंभ में उन्होंने संस्कृत में कविताएँ लिखीं। फिर महाकवि निराला की प्रेरणा से हिंदी में आए।

जन्म

जानकी वल्लभ शास्त्री का जन्म 5 फरवरी 1916 में बिहार के मैगरा गाँव में हुआ था। इनके पिता स्व. रामानुग्रह शर्मा था। उन्हें पशुओं का पालन करना बहुत पसंद था। उनके यहाँ दर्जनों गउएं, सांड, बछड़े तथा बिल्लियाँ और कुत्ते थे। पशुओं से उन्हें इतना प्रेम था कि गाय क्या, बछड़ों को भी बेचते नहीं थे और उनके मरने पर उन्हें अपने आवास के परिसर में दफन करते थे। उनका दाना-पानी जुटाने में उनका परेशान रहना स्वाभाविक था।

शिक्षा

जानकी वल्लभ शास्त्री ने मात्र 11 वर्ष की वय में ही इन्होंने 1927 में बिहार-उड़ीसा की प्रथमा परीक्षा (सरकारी संस्कृत परीक्षा) प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। शास्त्री की उपाधि 16 वर्ष की आयु में प्राप्तकर ये काशी हिन्दू

विश्वविद्यालय चले गए। ये वहां 1932 से 1938 तक रहे। उनकी विधिवत् शिक्षा-दीक्षा तो संस्कृत में ही हुई थी, लेकिन अपने श्रम से उन्होंने अंग्रेजी और बांग्ला का प्रभूत ज्ञान प्राप्त किया। वह रवींद्रनाथ के गीत सुनते थे और उन्हें गाते भी थे।

कार्यक्षेत्र

अत्यंत बाल्य-वय में ही इनको अपने माता की स्नेहिल-छाया से वंचित हो जाना पड़ा। आर्थिक समस्याओं के निदान हेतु इन्होंने बीच-बीच में नौकरी भी की। 1936 में लाहौर में अध्यापन कार्य किया और 1937-38 में रायगढ़ (मध्य प्रदेश) में राजकवि भी रहे। 1934-35 में इन्होंने साहित्याचार्य की उपाधि स्वर्णपदक के साथ अर्जित की और पूर्वबंग सारस्वत समाज ढाका के द्वारा साहित्यरत्न घोषित कि, गए। 1940-41 में रायगढ़ छोड़कर मुजफ्फरपुर आने पर इन्होंने वेदांतशास्त्री और वेदांताचार्य की परीक्षा, बिहार भर में प्रथम आकर पास कीं। 1944 से 1952 तक गवर्नमेंट संस्कृत कॉलेज में साहित्य-विभाग में प्राध्यापक, पुनः अध्यक्ष रहे। 1953 से 1978 तक बिहार विश्वविद्यालय के रामदयालु सिंह कॉलेज, मुजफ्फरपुर में हिन्दी के प्राध्यापक रहकर 1979-80 में अवकाश ग्रहण किया।

रचनाएँ

जानकी वल्लभ शास्त्री का पहला गीत 'किसने् बांसुरी बजाई' बहुत लोकप्रिय हुआ। प्रो. नलिन विमोचन शर्मा ने उन्हें प्रसाद, निराला, पंत और महादेवी के बाद पांचवां छायावादी कवि कहा है, लेकिन सचाई यह है कि वे भारतेंदु और श्रीधर पाठक द्वारा प्रवर्तित और विकसित उस स्वच्छंद धारा के अंतिम कवि थे, जो छायावादी अतिशय लाक्षणिकता और भावात्मक रहस्यात्मकता से मुक्त थी। शास्त्रीजी ने कहानियाँ, काव्य-नाटक, आत्मकथा, संस्मरण, उपन्यास और आलोचना भी लिखी हैं। उनका उपन्यास 'कालिदास' भी बृहत प्रसिद्ध हुआ था।

पहली रचना 'गोविन्दगानम'

इन्होंने सोलह-सत्रह की अवस्था में ही लिखना प्रारंभ किया था। इनकी प्रथम रचना 'गोविन्दगानम्' है जिसकी पदशय्या को कवि जयदेव से अबोध

स्पर्द्धा की विपरिणति मानते हैं। 'रूप-अरूप' और 'तीन-तरंग' के गीतों के पश्चात् 'कालन', 'अपर्णा', 'लीलाकमल' और 'बांसों का झुरमुट'- चार कथा संग्रह कमशः प्रकाशित हुए। इनके द्वारा लिखित चार समीक्षात्मक ग्रंथ- 'साहित्यदर्शन', 'चिंताधारा,' 'त्रयी', और 'प्राच्य साहित्य' हिन्दी में भावात्मक समीक्षा के सर्जनात्मक रूप के कारण समादृत हुआ। 1945-50 तक इनके चार गीति काव्य प्रकाशित हुए- 'शिप्रा', 'अवन्तिका',' मेघगीत' और 'संगम'। कथाकाव्य 'गाथा' का प्रकाशन सामाजिक दृष्टिकोण से क्रांतिकारी है। इन्होंने एक महाकाव्य 'राधा' की रचना की जो सन् 1971 में प्रकाशित हुई। 'हंस बलाका' गद्य महाकाव्य की इनकी रचना हिन्दी जगत् की एक अमूल्य निधि है। छायावादोत्तर काल में प्रकाशित पत्र-साहित्य में व्यक्तिगत पत्रों के स्वतंत्र संकलन के अंतर्गत शास्त्री द्वारा संपादित 'निराला के पत्र' (1971) उल्लेखनीय है। इनकी प्रमुख कृतियां संस्कृत में- 'काकली', 'बंदीमंदिरम', 'लीलापद्मम्', हिन्दी में 'रूप-अरूप', 'कानन', 'अपर्णा', 'साहित्यदर्शन', 'गाथा', 'तीर-तरंग', 'शिप्रा', 'अवन्तिका', 'मेघगीत', 'चिंताधारा', 'प्राच्यसाहित्य', 'त्रयी', 'पाषाणी', 'तमसा', 'एक किरण सौ झाइयां', 'स्मृति के वातायन', 'मन की बात', 'हंस बलाका', 'राधा' आदि हैं।

जानकी वल्लभ शास्त्री की रचनाएँ-

1. काव्य संग्रह
2. बाललता
3. अंकुर
4. उन्मेष
5. रूप-अरूप
6. तीर-तरंग
7. शिप्रा
8. अवन्तिका
9. मेघगीत
10. गाथा
11. प्यासी-पृथ्वी।

काव्य संग्रह

1. संगम
2. उत्पलदल
3. चन्दन वन
4. शिशिर किरण
5. हंस किंकिणी
6. सुरसरी
7. गीत
8. वितान
9. धूपतरी
10. बंदी मंदिरम्
11. समीक्षा
12. साहित्य दर्शन
13. त्रयी
14. प्राच्य साहित्य
15. स्थायी भाव और सामयिक साहित्य
16. चिन्ताधारा
17. संगीतिका
18. पाषाणी
19. तमसा
20. इरावती

नाटक

1. देवी
2. जिन्दगी
3. आदमी
4. नील-झील

उपन्यास

1. एक किरण–सौ झांइयां
2. दो तिनकों का घोंसला

अश्वबुद्ध

1. कालिदास
2. चाणक्य शिखा (अधूरा)

कहानी संग्रह

1. कानन
2. अपर्णा
3. लीला कमल
4. सत्यकाम
5. बांसों का झुरमुट

गजल संग्रह

1. सुने कौन नगमा

महाकाव्य

1. राधा

संस्कृत काव्य

1. काकली
2. संस्मरण
3. अजन्ता की ओर
4. निराला के पत्र
5. स्मृति के वातायन
6. नाट्य सम्राट पृथ्वीराज कपूर
7. हंस-बलाका
8. कर्म क्षेत्रे मरु क्षेत्र
9. अनकहा निराला

ललित निबंध

1. मन की बात
2. जो न बिक सकीं
3. भाषा और शैली

आचार्य जानकी, वल्लभ शास्त्री किसी खास विचारधारा के कवि नहीं हैं। उनकी रचनाओं में साहित्य की सभी धारायें समाहित हैं। मूलतः संस्कृत भाषा और साहित्य के आचार्य रहे आचार्य जानकीवल्लभ शास्त्री जी अंग्रेजी–बांग्ला–हिन्दी आदि अनेक भाषाओं के विद्वान् रहे। राका और बेला जैसी पत्रिकाओं का संपादन किया। दार्शनिकता और संगीत उनके गीतों को लोकप्रिय बनाते हैं। रस और आनंद की उनकी कविताओं, गीतों में प्रमुखता रही है। राग केदार उनका प्रिय राग रहा है। उनके गीतों में जीवन का वह पहलू है, जो शांति और स्थिरता का कायल है। वे कहते हैं गोल गोल घूमना इसमें नहीं है। बाहर से कुछ छीन झपटकर ले आने की खुशी नहीं अपने को पाने का आनंद है। उनसे बातचीत के क्रम में हमें उनकी दार्शनिकता और उनकी जीवन शैली वैदिक ऋषि परंपरा की याद दिलाती रही। शास्त्री जी ने अपने जीवन के मानक स्वयं गढ़े हैं।

सब अपनी अपनी कहते हैं।
कोई न किसी की सुनता है,
नाहक कोई सिर धुनता हैं।
दिल बहलाने को चल फिर कर,
फिर सब अपने में रहते हैं।
सबके सिर पर है भार प्रचुर,
सबका हारा बेचारा उर
अब ऊपर ही ऊपर हँसते,
भीतर दुर्भर दुःख सहते है।
ध्रुव लक्ष्य किसी को है न मिला,
सबके पथ में है शिला शिला
ले जाती जिधर बहा धारा,
सब उसी ओर चुप बहते हैं।

'निराला' बने प्रेरणास्त्रोत

सहज गीत आचार्य जानकीवल्लभ शास्त्री की पहचान है। उन्होंने छंदोबद्ध हिन्दी कविता लिखी हैं। प्रारंभ में वे संस्कृत में कविता करते थे। संस्कृत कविताओं का संकलन काकली के नाम से 1930 के आसपास प्रकाशित हुआ। निराला जी ने काकली के गीत पढ़कर ही पहली बार उन्हें प्रिय बाल पिक संबोधित कर पत्र लिखा था। बाद में वे हिन्दी में आ गए। निराला ही उनके

प्रेरणास्रोत रहे हैं। वह छायावाद का युग था। निराला उनके आदर्श बने। चालीस के दशक में कई छंदबद्ध काव्य-कथाएँ लिखीं, जो 'गाथा नामक उनके संग्रह में संकलित हैं। उन्होंने कई काव्य-नाटकों की रचना की और 'राधा जैसा श्रेष्ठ महाकाव्य रचा। वे कविसम्मेलनों में खूब सुने सराहे जाते थे। उनके गीतों में सहजता का सौन्दर्य है। बहुत सरल बिंब के माध्यम से इस सनातन भाव को चित्रित करते हैं। शृंगार उनका प्रिय रस है। उनकी कविताओं में माधुर्य है। सहज सौंदर्य के साथ-साथ वे लोकोन्मुख जनजीवन के कवि हैं।

सम्मान और पुरस्कार

शास्त्री मूलत: गीतकार हैं और इनके गीतों में छायावादी गीतों के ही संस्कार शेष हैं। विविधवर्णी रस-भावों में संकलित कोई डेढ़ हजार गीतों का प्रणयन इन्होंने किया है। परंपरागत दर्शन संवेदन और भाषा से निर्मित ये गीत उत्तर छायावाद युग के गीतों में अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं और इनका अपना अलग आकर्षण है। संस्कृत-कविताओं के प्रथम संकलन 'काकली' के प्रकाशन के बाद तो इन्हें 'अभिनव जयदेव' कहा जाने लगा।

1. राजेंद्र शिखर पुरस्कार
2. भारत भारती पुरस्कार
3. शिव सहाय पूजन पुरस्कार।

निधन

आचार्य जानकी वल्लभ शास्त्री का हृदयगति रुक जाने से 7 अप्रैल 2011 को बिहार के मुजफ्फरपुर जिले में निधन हो गया। वह 96 वर्ष के थे। वयोवृद्ध कवि के करीबी लोगों ने बताया कि शास्त्री जी लम्बे समय से बीमार चल रहे थे। उनके परिवार में पत्नी छाया देवी और एक पुत्री है। उन्होंने बताया कि आचार्य शास्त्री ने मुजफ्फरपुर स्थित अपने आवास 'निराला निकेतन' में अंतिम सांस ली। भारत सरकार की ओर से उन्हें पद्मश्री देने की घोषणा की गई थी, जिसे किसी विवाद के कारण उन्होंने लौटा दिया था।

7

नरेन्द्र शर्मा

रचनायें

उनके 17 कविता संग्रह, एक कहानी संग्रह, एक जीवनी और अनेक रचनाएँ पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई हैं। उनकी प्रमुख रचनाएं निम्नलिखित हैं–

पंडित नरेंद्र शर्मा हिन्दी के प्रसिद्ध कवि, लेखक एवं गीतकार सम्पादक थे। नरेंद्र शर्मा का जन्म 28 फरवरी, 1913 में उत्तर प्रदेश राज्य के खुर्जा नगर के जहाँगीरपुर नामक स्थान पर हुआ। उन्होंने इलाहाबाद विश्वविद्यालय से शिक्षाशास्त्र और अंग्रेजी में एम.ए. किया। 1934 में प्रयाग में अभ्युदय पत्रिका का संपादन किया। अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी स्वराज्य भवन में हिंदी अधिकारी रहे और फिर बॉम्बे टाकीज बम्बई में गीत लिखे। उन्होंने फिल्मों में गीत लिखे, आकाशवाणी से भी संबंधित रहे और स्वतंत्र लेखन भी किया। उनके 17 कविता संग्रह, एक कहानी संग्रह, एक जीवनी और अनेक रचनाएँ पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई हैं।

जीवन परिच

अल्पायु से ही साहित्यिक रचनायें करते हुए पंडित नरेन्द्र शर्मा ने 21 वर्ष की आयु में पण्डित मदन मोहन मालवीय द्वारा प्रयाग में स्थापित साप्ताहिक 'अभ्युदय' से अपनी सम्पादकीय यात्रा आरम्भ की। काशी विद्यापीठ में हिन्दी

व अंग्रेजी काव्य के प्राध्यापक पद पर रहते हुए 1940 में वे ब्रिटिश सरकार द्वारा प्रशासन् विरोधी गतिविधियों के लिये गिरफ्तार कर लिये गये और 1943 में मुक्त होने तक वाराणसी, आगरा और देवली में विभिन्न कारागारों में शचीन्द्रनाथ सान्याल, सोहनसिंह जोश, जयप्रकाश नारायण और सम्पूर्णानन्द जैसे ख्यातिनामों के साथ नजरबन्द रहे और 19 दिन तक अनशन भी किया। जेल से छूटने पर उन्होंने अनेक फिल्मों में गीत लिखे और फिर 1953 से आकाशवाणी से जुड़ गये। इस बीच उनका लेखन कार्य निर्बाध चलता रहा। 11 मई, 1947 को मुम्बई में उनका विवाह सुशीलाजी से हुआ और परिवार में तीन पुत्रियों व एक पुत्र का जन्म हुआ।

साहित्यिक परिचय

1931 ई. में पंडित नरेंद्र शर्मा की पहली कविता 'चांद' में छपी। शीघ्र ही जागरूक, अध्ययनशील और भावुक कवि नरेन्द्र ने उदीयमान नए कवियों में अपना प्रमुख स्थान बना लिया। लोकप्रियता में इनका मुकाबला हरिवंशराय बच्चन से ही हो सकता था। 1933 ई. में इनकी पहली कहानी प्रयाग के 'दैनिक भारत' में प्रकाशित हुई। 1934 ई. में इन्होंने मैथिलीशरण गुप्त की काव्यकृति 'यशोधरा' की समीक्षा भी लिखी। सन् 1938 ई. में कविवर सुमित्रनंदन पंत ने कुंवर सुरेश सिंह के आर्थिक सहयोग से नए सामाजिक-राजनीतिक, आर्थिक स्पंदनों से युक्त 'रूपाभ' नामक पत्र के संपादन करने का निर्णय लिया। इसके संपादन में सहयोग दिया नरेन्द्र शर्मा ने। भारतीय संस्कृति के प्रमुख ग्रंथ 'रामायण' और 'महाभारत' इनके प्रिय ग्रंथ थे। महाभारत में रुचि होने के कारण ये 'महाभारत' धारावाहिक के निर्माता बी. आर. चोपड़ा के अंतरंग बन गए। इसलिए जब उन्होंने 'महाभारत' धारावाहिक का निर्माण प्रारंभ किया तो नरेन्द्रजी उनके परामर्शदाता बने। उनके जीवन की अंतिम रचना भी 'महाभारत' का यह दोहा ही है- 'शंखनाद ने कर दिया, समारोह का अंत, अंत यही ले जाएगा, कुरुक्षेत्र पर्यन्त'।

प्रमुख कृतियाँ

नरेन्द्र शर्मा जी ने हिन्दी साहित्य की 23 पुस्तकें लिखकर श्रीवृद्धि की है। जिनमें प्रमुख हैं–

नरेन्द्र शर्मा की प्रमुख कृतियाँ

1. कविता-संग्रह
2. प्रवासी के गीत
3. मिट्टी और फूल
4. अग्निशस्य
5. प्यासा निर्झर
6. मुठ्ठी बंद रहस्य
7. प्रबंध काव्य
8. मनोकामिनी
9. द्रौपदी
10. उत्तरजय सुवर्णा
11. काव्य-संयचन
12. आधुनिक कवि
13. लाल निशान।

अन्य

ज्वाला-परचूनी (कहानी-संग्रह, 1942 में 'कड़वी-मीठी बात' नाम से प्रकाशित)

मोहनदास कर्मचंद गांधी–एक प्रेरक जीवनी

सांस्कृतिक संक्रांति और संभावना (भाषण)

लगभग 55 फिल्मों में 650 गीत एवं 'महाभारत' का पटकथा-लेखन और गीत-रचना की।

दिलीप कुमार को दिया नाम

पंडित नरेंद्र शर्मा उन्नीसवीं सदी के चौथे दशक में ही मुंबई आ गए थे। बॉम्बे टॉकीज की अधिष्ठार्थी देविका रानी ने युसुफ खान नाम वाले किसी पठान युवा को अपनी फिल्म 'ज्वार-भाटा' का नायक बनाने की बात जब सोची तो उन्होंने पंडित नरेश शर्मा से पूछा, 'इस युवक को किस फिल्मी नाम के साथ परदे पर उतारा जाए।' पंडित नरेंद्र शर्मा ने उन्हें शायद 'वासुदेव' के साथ 'दिलीप कुमार' नाम सुझाया। देविका रानी को दिलीप कुमार नाम जंच गया और इस तरह युसुफ मियां दिलीप कुमार के नाम से 'ज्वार-भाटा' फिल्म के नायक बनकर

रुपहले परदे पर आए। चालीस के दशक में उनका गीत 'नैया को खेवैया के किया हमने हवाले' 'ज्वारा भाटा' के साथ खास लोकप्रिय हुआ था।

निधन

11 फरवरी, 1989 ई. को हृदय-गति रुक जाने से पंडित नरेन्द्र शर्मा का निधन मुम्बई, महाराष्ट्र में हो गया।

8

आरसी प्रसाद सिंह

मैथिली और हिन्दी के महाकवि आरसी प्रसाद सिंह (19 अगस्त 1911 – नवम्बर 1996) रूप, यौवन और प्रेम के कवि के रूप में विख्यात थे। बिहार के चार नक्षत्रों में वियोगी के साथ प्रभात और दिनकर के साथ आरसी सदैव याद किये जायेंगे।

आरसी बाबू का जन्म बिहार के समस्तीपुर जिले के ,ौत गाँव में 19 अगस्त 1911 में हुआ था।

आरसी प्रसाद सिंह भारत के प्रसिद्ध कवि, कथाकार और एकांकीकार थे। छायावाद के तृतीय उत्थान के कवियों में महत्त्वपूर्ण स्थान रखने वाले और 'साहित्य अकादमी पुरस्कार' से सम्मानित आरसी प्रसाद सिंह को जीवन और यौवन का कवि कहा जाता है। बिहार के श्रेष्ठ कवियों में इन्हें गिना जाता है। आरसी प्रसाद सिंह हिन्दी और मैथिली भाषा के ऐसे प्रमुख हस्ताक्षर थे, जिनकी रचनाओं को पढ़ना हमेशा ही दिलचस्प रहा है। इस महाकवि ने हिन्दी साहित्य में बालकाव्य, कथाकाव्य, महाकाव्य, गीतकाव्य, रेडियो रूपक एवं कहानियों समेत कई रचनाएँ हिन्दी एवं मैथिली साहित्य को समर्पित की थीं। आरसी बाबू साहित्य से जुड़े रहने के अतिरिक्त राजनीतिक रूप से भी जागरूक एवं निर्भीक रहे। उन्होंने अपनी लेखनी से नेताओं पर कटाक्ष करने में कोई कोर-कसर नहीं छोड़ी थी।

जन्म तथा शिक्षा

आरसी प्रसाद सिंह का जन्म 19 अगस्त, 1911 को बिहार के समस्तीपुर जिला में रोसड़ा रेलवे स्टेशन से आठ किलोमीटर की दूरी पर स्थित बागमती नदी के किनारे एक गाँव 'एरौत' (पूर्व नाम ऐरावत) में हुआ था। यह गाँव महाकवि आरसी प्रसाद सिंह की जन्मभूमि और कर्मभूमि है, इसीलिए इस गाँव को आरसी नगर एरौत भी कहा जाता है। अपनी शिक्षा पूर्ण करने के बाद आरसी प्रसाद सिंह की साहित्य लेखन की ओर रुचि बढ़ी। उनकी साहित्यिक रुचि एवं लेखन शैली से प्रभावित होकर रामवृक्ष बेनीपुरी ने उन्हें 'युवक' समाचार पत्र में अवसर प्रदान किया। बेनीपुरी जी उन दिनों 'युवक' के संपादक थे। 'युवक' में प्रकाशित रचनाओं में उन्होंने ऐसे क्रांतिकारी शब्दों का प्रयोग किया था कि तत्कालीन अंग्रेज हुकूमत ने उनके खिलाफ गिरफ्तारी का वारंट जारी कर दिया था।

कृतियाँ

आरसी प्रसाद सिंह ने हिन्दी व मैथिली भाषा में अपनी कृतियाँ लिखी, जो इस प्रकार है–

हिन्दी की प्रकाशित कृतियाँ

कविता

1. आजकल
2. कलापी
3. संचयिता
4. आरसी
5. जीवन और यौवन
6. नई दिशा
7. पांचजन्य
8. द्वंद समास
9. सोने का झरना

कथा माला

प्रबन्ध काव्य

नन्द दास
संजीवनी
आरण्यक
उदय
गीत
प्रेम गीत

कहानी

पंचपल्लव
खोटा सिक्का
कालरात्रि
एक प्याला चाय
आंधी के पत्ते
ठण्ढी छाया

बाल साहित्य

चंदामामा
चित्रों में लोरियाँ
ओनामासी
रामकथा
जादू का वंशी
कागज की नाव
बाल-गोपाल
हीरा-मोती
जगमग
कलम और बंदूक

समीक्षा

कविवर सुमति–युग और साहित्य
मैथिली की प्रकाशित कृतियाँ

कविता

माटिक दीप
पूजाक फूल
मेघदूत
सूर्यमुखी (साहित्य अकादमी पुरस्कार)
अप्रकाशित कृतियाँ

कविता

कचनार
जल कल्लोल
वनमर्मर
मधुमल्लिका
आग और धुआँ
जय भारती
वलाका
संकलिता
अमावस्या
आवारा बादल
आकाश कुसुम
चतुरंग
जो धारा से उठे
महकती कल्पना मेरी
शिखर चेतना मेरी

प्रबंध काव्य

पूर्णोदय
असूर्यम्पश्या

सप्त पर्ण
कुंअर सिंह

गीत

नवगीतिका
निवेदिता
मंजुला
गान-मंजरी
गीतमालिका
दिलरूबा

नेताओं पर कटाक्ष

आरसी प्रसाद सिंह साहित्य से जुड़े रहने के अलावा राजनीतिक रूप से भी जागरूक एवं निर्भीक व्यक्ति थे। उन्होंने अपनी लेखनी से नेताओं पर कटाक्ष करने में कभी कोई कसर नहीं छोड़ी। नेताओं पर कटाक्ष करते हुए उन्होंने लिखा है कि- 'बरसाती मेंढक से फूले, पीले-पीले गदरा, गाँव-गाँव से लाखों नेता खद्दरपोश निकल आए।' पर्यावरण एवं हरियाली के प्रति सदा सजग रहने वाले महाकवि आरसी बाबू पेड़-पौधों की हो रही अवैध कटाई से मर्माहत होकर एक स्थान पर लिखते हैं कि- 'आज अरण्य स्वयं रूदन करता है और उसका रूदन कोई नहीं सुनता। अरण्य का रूदन कोई सुनता तो उस पर भला कुल्हाड़ी ही क्यों चलाता?' आरसी प्रसाद सिंह से जुड़े संस्मरण के बारे में पत्रकार संजीव कुमार सिंह कहते हैं कि- '1956 से 1958 के बीच उन्होंने आकाशवाणी लखनऊ एवं आकाशवाणी इलाहाबाद में हिन्दी कार्यक्रम अधिकारी के रूप में अपनी सेवाएँ दीं। इस दौरान आकाशवाणी के एक अधिकारी उन पर हमेशा हावी रहते थे। एक दिन उन्होंने अमर चेतना का कलाकार, शिल्पी पराधीन होना नहीं चाहता, भुवन मोहिनी सृष्टि का विधाता कभी दीन होना नहीं चाहता, लिखकर अपना त्यागपत्र उसे सौंप दिया। आकाशवाणी की नौकरी छोड़ने के बाद उन्होंने अपना सारा जीवन साहित्य के नाम कर दिया और मरते दम तक वह काव्य साधना में लीन रहे।

राजाश्रय ठुकराना

आरसी प्रसाद सिंह के बारे में 'पद्मभूषण' प्राप्त अमृतलाल नागर ने कहा था कि- 'उन्हें जब कभी देख लेता हूँ, दिल खुश हो जाता है। आरसी में मुझे प्राचीन साहित्यिक निष्ठा के सहज दर्शन मिलते हैं।' अगर आरसी प्रसाद के व्यक्तित्त्व की बात की जाये तो उन्होंने कभी भी परवशता स्वीकार नहीं की। उम्र भर नियंत्रण के खिलाफ आक्रोश जाहिर करते रहे। चालीस के दशक में जयपुर नरेश महाकवि आरसी को अपने यहाँ राजकवि के रूप में भी सम्मानित करना चाहते थे। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु उन्होंने काफी आग्रह, अनुनय-विनय किया, परंतु आरसी बाबू ने चारणवृत्ति तथा राजाश्रय को ठुकरा दिया। ऐसी थी महाकवि आरसी की शखिस। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र', राम कुमार वर्मा, डॉ. धीरेंद्र वर्मा, विष्णु प्रभाकर, शिव मंगल सिंह 'सुमन', बुद्धिनाथ मिश्र और अज्ञेय समेत कई रचनाकारों ने हिन्दी और मैथिली साहित्य की इस विभूति को सम्मान दिया।

साहित्यकारों के कथन

आचार्य जानकीवल्लभ शास्त्री लिखते हैं कि- 'बिहार के चार तारों में वियोगी के साथ प्रभात और दिनकर के साथ आरसी को याद किया जाता है। किंतु आरसी का काव्य मर्म-मूल से प्रलम्ब डालियों और पल्लव-पत्र-पुष्पों तक जैसा प्राण-रस संचारित करता रहा है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। किसी एक विषय, स्वर या कल्पना के कवि वह नहीं हैं। उनकी संवेदना जितनी विषयों से जुड़ी हुई है, उनकी अनुभूति जितनी वस्तुओं की छुअन से रोमांचित है, उनका स्वर जितने आरोहों, अवरोहों में अपना आलोक निखारता है, कम ही कवि उतने स्वरों से अपनी प्रतिभा के प्रसार के दावेदार हो सकते हैं।'

डॉ. नामवर सिंह ने महाकवि आरसी की एक कृति 'नन्ददास' के बारे में लिखा है कि- 'रोमांटिक कवियों में कुछ कवि आगे चलकर अध्यात्मवाद की ओर मुड़ गये और आरसी भी उनमें से एक हैं। निराला ने तुलसीदास की जीवन कथा के माध्यम से देशकाल के शर से विंधकर 'जागे हुए अशेष छविधर' छायावादी कवि की छवि दिखलाकर परम्परा का विकास किया तो कवि आरसी ने 'नन्ददास' के माध्यम से परम्परा का पुनरालेखन किया है।'

आरसी प्रसाद सिंह की कहानियों का जिक्र करते हुए हरीश जायसवाल ने लिखा है- 'आरसी बाबू की कहानियों में जहाँ प्रेम अपनी ऊँचाई पर दीख

पड़ता है, वहाँ बलिदान भी अपनी चरम सीमा पर स्थित मालूम होता है। सस्ते रोमांस की कमी उनकी कहानियों को और अधिक निखारने में बहुत हद तक कामयाब हुई है। प्रेम के नाम पर आधुनिक नीचता से कहानी अछूती मालूम होती है, जो शुभ है।'

डॉ. रामचरण महेंद्र ने कहा था- 'श्री आरसी प्रसाद सिंह हिन्दी में कवि, कहानीकार और एकांकीकार के रूप में कार्य कर रहे हैं। हिन्दी संसार ने कवि के रूप में उनकी कृतियों की महत्ता और मौलिकता का लोहा माना है। यह सत्य है कि कवि के रूप में श्री आरसी प्रसाद सिंह ने मर्मस्पर्शी काव्य की सृष्टि की है, किंतु अपनी एकांकियों में भी आप चिंतन-प्रधान गम्भीर साहित्य की सृष्टि कर सके हैं। इनमें समाज, धर्म, राजनीति, सामयिक घटनाओं, भौतिकवाद, समाजवाद तथा साम्यवाद का विवेचन हुआ है।'

ग्रामीण और नजदीकी सीताराम सिंह 'सरोज' के अनुसार- 'महाकवि आरसी एक ही साथ उपमा और उपमेय दोनों हैं। चिर यौवना मुक्त वाणी के अमर प्रस्तोता ने चेतना को रूपायित करने का जो स्तुत्य कार्य किया है, उसका विवेचन महान् चिंतक, विशिष्ट साधक और युगाराध्य कवि जैसे शीर्षकों के अंतर्गत समीचीन ही माना जायेगा।'

रचित कवितायें

माटिक दीप (मैथिली काव्य संग्रह)

पूजाक फूल (मैथिली काव्य संग्रह)

सूर्यमुखी (मैथिली काव्य संग्रह) (साहित्य अकादमी पुरस्कार सन् 1948 में)

कागज की नाव (हिन्दी)

अनमोल वचन (हिन्दी)

"चलना है, केवल चलना है। जीवन चलता ही रहता है। रुक जाना है, मर जाना ही, निर्झर यह झड़ कर कहता है।" आरसी प्रसाद सिंह

जीवन का झरना आरसी प्रसाद सिंह द्वारा रचित

यह जीवन क्या है? निर्झर है, मस्ती ही इसका पानी है। सुख-दुःख के दोनों तीरों से चल रहा राह मनमानी है। कब फूटा गिरि के अंतर से? किस अंचल से उतरा नीचे? किस घाटी से बह कर आया समतल में अपने को खींचे? निर्झर

में गति है, जीवन है, वह आगे बढ़ता जाता है! धुन एक सिर्फ है चलने की, अपनी मस्ती में गाता है। बाधा के रोडों से लड़ता, वन के पेडो से टकराता, बढ़ता चट्टानों पर चढ़ता, चलता यौवन से मदमाता।

लहरें उठती हैं, गिरती हैं,
नाविक तट पर पछताता है।
तब यौवन बढ़ता है आगे,
निर्झर बढ़ता ही जाता है।
निर्झर कहता है, बढ़े चलो!
देखो मत पीछे मुड़ कर!
यौवन कहता है, बढ़े चलो!
सोचो मत होगा क्या चल कर?
चलना है, केवल चलना है!
जीवन चलता ही रहता है!
रुक जाना है मर जाना ही,
निर्झर यह झड़ कर कहता है!
जीवन और यौवन आरसी प्रसाद सिंह द्वारा रचित
मै आया हूँ जीवन लेकर, मैं यौवन लेकर आया हूँ!

आतुर कण कण से मिलने को फड़क रही हैं मेरी बाहें! निकल गया मैं जिधर, उधर ही टूटे शिखर, गयीं बन राहें! मुझमें जादू है, मिट्टी को छू दूँ, बन जाये सोना! मेरे हृदय-कमल से सुरभित है पृथ्वी का कोना-कोना!

दिन में चमका प्रखर सूर्य-सा, निशि में शशि बन मुस्काया हूँ! मैं आया हूँ जीवन लेकर, मैं यौवन लेकर आया हूँ!

सावन की घनघोर घटा-सा मैं बरसूँगा, मैं लरजूंगा! और वज्र-सा भीम व्योम के वक्षस्थल पर मैं गरजूंगा! चूमा करती है बिजली को बादल में हँस मेरी हस्ती रज-रज के जर्जर प्राणों में भर दूँगा मैं अपनी मस्ती!

जगती के सौंदर्य फूल पर! भौंरा बनकर मंडराया हूँ!

..... पैठा हूँ पाताल-गर्भ में, महासिंधु सा लहराया हूँ! मैं आया हूँ जीवन लेकर, मैं यौवन लेकर आया हूँ!

(जीवन और यौवन से)

जय अखंड भारत आरसी प्रसाद सिंह के द्वारा रचित

शक्ति ऐसी है नहीं संसार में कोई कहीं पर, जो हमारे देश की राष्ट्रीयता को अस्त कर दे। ध्वान्त कोई है नहीं आकाश में ऐसा विरोधी, जो हमारी एकता के सूर्य को विध्वस्त कर दे! राष्ट्र की सीमांत रेखाएं नहीं हैं बालकों के खेल का कोई घरौंदा, पाँव से जिसको मिटा दे। देश की स्वाधीनता सीता सुरक्षित है, किसी दश- कंठ का साहस नहीं, ऊँगली कभी उसपर उठा दे।

देश पूरा एक दिन हुंकार भी समवेत कर दे, तो सभी आतंकवादियों का बगुला टूट जाये। किन्तु, ऐसा शील भी क्या, देखता सहता रहे जो आततायी मातृ-मंदिर की धरोहर लूट जाये। रोग, पावक, पाप, रिपु प्रारंभ में लघु हों भले ही किन्तु, वे ही अंत में दुर्दम्य हो जाते उमड़कर। पूर्व इस भय के की वातावरण में विष फैल जाये, विषधरों के विष उगलते दंश को रख दो कुचलकर

झेलते तूफान ऐसे सैकड़ों आये युगों से, हम इसे भी ऐतिहासिक भूमिका में झेल लेंगे। किन्तु, बर्बर और कायरता कलंकित कारनामों की पुनरावृति को निश्चेष्ट होकर हम सहेंगे।

जन्मभूमि जननी आरसी प्रसाद सिंह के द्वारा रचित

जन्मभूमि जननी! पृथ्वी शिर मौर मुकुट चन्दन सन्तरिणी जन्मभूमि जननी। वन-वन में मृगशावक, नभ में रवि-शशि दीपक, हिमगिरि से सागर तक विपुलायत धरणी, जन्मभूमि जननी। दिक-दिक् में इन्द्रजाल, नवरसमय आलवाल, पुष्पित अंचल रसाल, नन्दन वन सरणी, जन्मभूमि जननी। शक्ति, ओज, प्राणमयी, देवी वरदानमयी, प्रतिपल कल्याणमयी दिवा रजनी, जन्मभूमि जननी।

बाजि गेल रनडँक आरसी प्रसाद सिंह द्वारा रचित

बाजि गेल रनडँक, डँक ललकारि रहल अछि गरजि-गरजि कै जन जन के परचारि रहल अछि तरुण स्विदेशक की आबहुँ रहबें तों बैसल आँखि फोल, दुर्मद दानव कोनटा लग पैसल कोशी-कमला उमड़ि रहल, कल्लौल करै अछि के रोकत ई बाढ़ि, ककर सामर्थ्य अडै अछि स्वीर्ग देवता क्षुब्धँ,

राज–सिंहासन् गेलै मत्त भेल गजराज, पीठ लागल अछि मोलै चलि नहि सकतै आब सवारी हौदा कसि कै ई अरदराक मेघ ने मानत, रहत बरसि कै एक बेरि बस देल जखन कटिबद्ध "चुनौती" फेर आब के घूरि तकै अछि साँठक पौती ? आबहुँ की रहतीह मैथिली बनल–बन्दिगनी ? तरुक छाह में बनि उदासिन्‌ी जनक–नन्दिनी डँक बाजि गेल, आगि लँक में लागि रहल अछि अभिनव विद्यापतिक भवानि जागि रहल अछि

9

भवानी प्रसाद मिश्र

भवानी प्रसाद मिश्र हिन्दी के प्रसिद्ध कवि तथा गांधीवादी विचारक थे। वह 'दूसरा सप्तक के प्रथम कवि हैं। गांधी-दर्शन का प्रभाव तथा उसकी झलक उनकी कविताओं में साफ देखी जा सकती है। उनका प्रथम संग्रह 'गीत-फरोश' अपनी नई शैली, नई उद्‌भावनाओं और नये पाठ-प्रवाह के कारण अत्यंत लोकप्रिय हुआ। प्यार से लोग उन्हें भवानी भाई कहकर सम्बोधित किया करते थे। उन्होंने स्वयं को कभी भी निराशा के गर्त में डूबने नहीं दिया। जैसे सात-सात बार मौत से वे लड़े वैसे ही आजादी के पहले गुलामी से लड़े और आजादी के बाद तानाशाही से भी लड़े। आपातकाल के दौरान नियम पूर्वक सुबह-दोपहर-शाम तीनों वेलाओं में उन्होंने कवितायें लिखी थीं जो बाद में त्रिकाल सन्ध्या नामक पुस्तक में प्रकाशित भी हुई। भवानी भाई को 1972 में उनकी कृति बुनी हुई रस्सी पर साहित्य अकादमी पुरस्कार मिला। 1981-82 में उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान का साहित्यकार सम्मान दिया गया तथा 1983 में उन्हें मध्य प्रदेश शासन् के शिखर सम्मान से अलंकृत किया गया।

जीवन परिचय

भवानीप्रसाद मिश्र का जन्म गाँव टिगरिया, तहसील सिवनी मालवा, जिला होशंगाबाद (मध्य प्रदेश) में हुआ था। क्रमशः सोहागपुर, होशंगाबाद, नरसिंहपुर

और जबलपुर में उनकी प्रारम्भिक शिक्षा हुई। 1934–35 में उन्होंने हिन्दी, अंग्रेजी और संस्कृत विषय लेकर बी0ए0 पास किया। महात्मा गांधी के विचारों के अनुसार शिक्षा देने के विचार से एक स्कूल खोलकर अध्यापन कार्य शुरू किया और उस स्कूल को चलाते हुए 1942 में गिरफ्तार होकर 1945 में छूटे। उसी वर्ष महिलाश्रम वर्धा में शिक्षा देने एक शिक्षक की तरह गये और चार–पाँच साल वहीं बिताये। कविताएँ लिखना लगभग 1930 से ही नियमित रूप से प्रारम्भ हो गया था और कुछ कविताएँ पं0 ईश्वरी प्रसाद वर्मा के सम्पादन में निकलने वाले हिन्दूपंच में हाईस्कूल पास होने के पहले ही प्रकाशित हो चुकी थीं। सन् 1932–33 में वे माखनलाल चतुर्वेदी के सम्पर्क में आये। चतुर्वेदी जी आग्रहपूर्वक कर्मवीर में उनकी कविताएँ प्रकाशित करते रहे। हंस में भी उनकी काफी कविताएँ छपीं उसके बाद अज्ञेय जी ने 'दूसरा सप्तक' में उन्हें प्रकाशित किया। 'दूसरा सप्तक' के बाद प्रकाशन क्रम ज्यादा नियमित होता गया। उन्होंने चित्रपट के लिये संवाद लिखे और मद्रास के ए0बी0एम0 में संवाद निर्देशन भी किया। मद्रास से वे मुम्बई में आकाशवाणी के प्रोड्यूसर होकर गये। बाद में उन्होंने आकाशवाणी केन्द्र दिल्ली में भी काम किया। जीवन के 33वें वर्ष से वे खादी पहनने लगे। जीवन की सान्ध्य बेला में वे दिल्ली से नरसिंहपुर (मध्यप्रदेश) एक विवाह समारोह में गये थे वहीं अचानक बीमार हो गये और अपने सगे–सम्बन्धियों व परिवार–जनों के बीच अन्तिम साँस ली। किसी को मरते समय भी कष्ट नहीं पहुँचाया। उनके पुत्र अनुपम मिश्र एक सुपरिचित पर्यावरणविद थे।

प्रमुख कृतियाँ

कविता संग्रह– गीत फरोश, चकित है दुख, गान्धी पंचशती, बुनी हुई रस्सी, खुशबू के शिलालेख, त्रिकाल सन्ध्या, व्यक्तिगत, परिवर्तन जिए, तुम आते हो, इदम् न मम, शरीर कविता– फसलें और फूल, मानसरोवर दिन, सम्प्रति, अँधेरी कविताएँ, तूस की आग, कालजयी, अनाम, नीली रेखा तक और सन्नाटा।

मिश्र जी विचारों, संस्कारों और अपने कार्यों से पूर्णतः गांधीवादी हैं। गाँधीवाद की स्वच्छता, पावनता और नैतिकता का प्रभाव और उसकी झलक भवानी प्रसाद मिश्र की कविताओं में साफ देखी जा सकती है। उनका प्रथम संग्रह 'गीत फरोश, अपनी नई शैली, नई उद्भावनाओं और नये पाठ–प्रवाह के कारण अत्यंत लोकप्रिय हुआ।

कृतियाँ

गीत.फरोश
चकित है दुख
गांधी पंचशती
अंधेरी कविताएँ
बुनी हुई रस्सी
व्यक्तिगत
खुश्बू के शिलालेख
परिवर्तन जि,
त्रिकाल संध्या
अनाम तुम आते हो
इंदन मम्
शरीर, कविता, फसलें और फूल
मानसरोवर
दिन
संप्रति
'नीली रेखा तकक्ष आदि कुल 22 पुस्तकें आपकी प्रकाशित हुई। आपने संस्मरण, निबंध तथा बाल-साहित्य भी रचा।

शैली

भवानी प्रसाद मिश्र उन गिने चुने कवियों में थे, जो कविता को ही अपना धर्म मानते थे और आमजनों की बात उनकी भाषा में ही रखते थे। वे 'कवियों के कवि थे। मिश्र जी की कविताओं का प्रमुख गुण कथन की सादगी है। बहुत हल्के-फुलके ढंग से वे बहुत गहरी बात कह देते हैं जिससे उनकी निश्छल अनुभव संपन्नता का आभास मिलता है। इनकी काव्य-शैली हमेशा पाठक और श्रोता को एक बातचीत की तरह सम्मिलित करती चलती है। मिश्र जी ने अपने साहित्यिक जीवन को बहुत प्रचारित और प्रसारित नहीं किया। मिश्र जी मौन निश्छलता के साथ साहित्य-रचना में संलग्न हैं। इसीलिए उनके बहुत कम काव्य-संग्रह प्रकाशित हुए हैं। 'गीत-फरोश के प्रकाशन के वर्षों बाद 'चकित है दुख', और 'अंधेरी कविताएँ नामक दो काव्य-संग्रह इधर प्रकाशित हुए हैं।

गांधी गीतों के गायक

भवानीबाबू एक बार शुरू करें फिर उन्हें दूसरा सुनाने का आग्रह करने की जरूरत नहीं पड़ती थी। एक के बाद दूसरी कविता निकलती जाती थी, पंचतंत्र की कथाओं की भांति। कई बार तो एक कविता कब पूरी हुई और दूसरी कब शुरू हुई इसका श्रोता को भान नहीं रहता। मेघाणी भाई गुजराती के प्रख्यात कवि झवेरचंद मेघाणी के अलावा इतनी अधिक स्वरचित रचनाओं को कंठस्थ रखने वाले किसी अन्य कवि से मिलना बहुत मुश्किल है। जब वे काव्य-पाठ करते तब मानो श्रोता उन पर उपकार कर रहे हों ऐसी कृतज्ञ दृष्टि से उन्हें देख रहे होते थे। परंतु ज्यों-ज्यों गीतों में वे गहरे उतरते त्यों.त्यों उनका पाठ स्वान्तः सुखाय हो जाता। बावजूद इसके श्रोताओं को भी वे सरोबार कर देते थे। कई बार तो उनका छंद श्रोताओं को साथ गाने की प्रेरणा दे जाता था।

चलो गीत गाओ चलो गीत गाओ।
कि गा गा के दुनिया को सर पर उठाओ
अभागों की टोली अगर गा उठेगी
तो दुनिया पे दहशत बड़ी छा उठेगी
सुरा-बेसुरा कुछ न सोचेंगे गाओ
कि जैसा भी सुर पास में है चढ़ाओ

मानववादी कवि

आजादी के बाद भवानी प्रसाद अधिकतर दिल्ली की धूल और धुएं के बीच शहर में रहे। परंतु देश के कल्याण की कामना ने उन्हें कभी दिल्ली की माया में फंसने् नहीं दिया। यूं बड़े लोगों के साथ जान-पहचान की कमी न थी। महात्मा गांधी, विनोबा भावे, जवाहरलाल नेहरू, जैसों के साथ उनका परिचय था। बजाज कुटुम्ब के साथ घरोपा था। श्रीमन्नारायण तो उनके मुक्त प्रशंसक थे परंतु इनके पहचान का खुद लाभ कभी नहीं लिया। विचारों से भवानी बाबू सच्चे गांधीवादी थे, मगर उनका कवि हृदय किसी वाद के खांचे में समा जा, ऐसा न था। इसीलिए वे गांधीवादी कवि बनने के बदले मानववादी कवि बने रहे। भवानी प्रसाद मिश्र की कविताओं की समीक्षा करते हुए प्रोफेसर महावीर सरन जैन का कथन है कि, हिन्दी की नई कविता पर सबसे बड़ा आक्षेप यह है कि उसमें अतिरिक्त अनास्था, निराशा, विशाद, हताशा, कुंठा और मरणधर्मिता है। उसको पढ़ने के बाद जीने की ललक समाप्त हो जाती है, व्यक्ति हतोत्साहित

हो जाता है, मन निराशावादी और मरणासन्न हो जाता है। यह कि नई कविता ने पीड़ा, वेदना, शोक और निराशा को ही जीवन का सत्य मान लिया है। नई कविता भारत की जमीन से प्रेरणा प्राप्त नहीं करती। इसके विपरीत यह पश्चिम की नकल से पैदा हुई है। भवानी प्रसाद मिश्र की कविताँ, इन सारे आरोपों को ध्वस्त कर देती हैं।

मिश्र जी गाँधीवादी है। गाँधी की देश-भक्ति मंजिल नहीं है। गाँधी जी की देश-भक्ति विश्व के जीव मात्र के प्रति प्रेम और उसकी सेवा करने के लिए उनकी जीवन यात्रा का एक पड़ाव है। उनके विचार में कहीं भी लेश मात्र भी निराशा का भाव नहीं है। उसमें आशा, विश्वास और आस्था की ज्योति आलोकित है। इसी आलोक के कारण गाँधी जी ने दक्षिण-अफ्रीका और भारत में जो जन-आन्दोलन चला, उन्होंने सम्पूर्ण समाज में नई जागृति, नई चेतना और नया संकल्प भर दिया। उनके जीवन दर्शन से विशाद, निराशा और मरण-धर्मिता नहीं अपितु इसके सर्वथा विपरीत नई आशा, नई आस्था और नई उमंग पैदा होती है। उससे सत्य, अहिंसा एवं प्रेम की त्रिवेणी प्रवाहित होती है। देखें–प्रोफेसर महावीर सरन जैन–गाँधी दर्शन की प्रासंगिकता। भवानी प्रसाद मिश्र की कविताएँ इसी कारण समाज में जो विपन्न हैं, लाचार हैं, थके हुए हैं, धराशायी हैं उन सबको सहारा देने के लिए प्रेरित करती हैं, उनको उठाने के लिए प्रोत्साहित करती हैं'। उनकी कविता घरेलू विषयों से लगाकर आध्यात्मिकता के शिखरों तक का भ्रमण करती है। उन्हें ऐहिक सुख की परवाह न थी। वे कहते, 'सुख अगर मेरे घर में आ जाए तो उसे बैठायेंगे कहां स्वराज के बाद का भारत जिस तरह महात्मा गांधी के दिखा, मार्ग से विचलित हुआ उससे भवानी बाबू का हृदय टीस उठता। 1959 में लिखी एक कविता में उन्होंने इस टीस पहुंचाने वाली दिशा की ओर इंगित करते हुए कहा था।

पहले इतने बुरे नहीं थे तुम
याने इससे अधिक सही थे तुम
किंतु सभी कुछ तुमहीं करोगे इस इच्छा ने
अथवा और किसी इच्छा ने, आसपास के लोगों ने
या रूस-चीन के चक्कर, टक्कर संयोगों ने
तुम्हें देश की प्रतिभाओं से दूर कर दिया
तुम्हें बड़ी बातों का ज्यादा मोह हो गया
छोटी बातों से संपर्क खो गया

धुनक-पींज कर, कात-बीन कर
अपनी चादर खुद न बनाई
बल्कि दूर से कर्ज लेकर मंगाई
और नतीजा चाचा-भतीजा
दोनों के कल्पनातीत है
यह कर्जे की चादर जितना ओढ़ो
उतनी कड़ी शीत है।

भवानी बाबू जिस आध्यात्मिक पीठ पर आसीन थे उसने् उन्हें कभी निराशा में डूबने नहीं दिया। जैसे सात-सात बार मौत से वे लड़े वैसे ही आजादी के पहले गुलामी से लड़े और आजादी के बाद तानाशाही से भी लड़े।

सम्मान और पुरस्कार

भवानी दादा की रचनाओं में पाठक से संवाद करने की क्षमता है। सन् 1972 में आपकी कृति 'बुनी हुई रस्सी के लिए आपको साहित्य अकादमी पुरस्कार मिला। इसके अतिरिक्त अन्य अनेक पुरस्कारों के साथ-साथ आपने भारत सरकार का पद्म श्री अलंकार भी प्राप्त किया। 1981-82 में उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान के संस्थान सम्मान से सम्मानित हुए और 1983 में उन्हें मध्य प्रदेश शासन् के शिखर सम्मान से अलंकृत किया गया।

निधन

20 फरवरी सन् 1985 को हिन्दी काव्य-जगत् का यह अनमोल सितारा अपनी कविताओं की थाती यहाँ छोड़ हमेशा के लिए हमसे बिछड़ गया।

बाल कविताएँ - तुकों के खेल,
संस्मरण - जिन्होंने मुझे रचा
निबन्ध संग्रह - कुछ नीति कुछ राजनीति।

शैली

भवानी प्रसाद मिश्र उन गिने-चुने कवियों में थे जो कविता को ही अपना धर्म मानते थे और आम जनों की बात उनकी भाषा में ही रखते थे। उन्होंने ताल ठोंककर कवियों को नसीहत दी थी-

जिस तरह हम बोलते हैं उस तरह तू लिख,
और इसके बाद भी हम से बड़ा तू दिख।

उनकी बहुत सारी कविताओं को पढ़ते हुए महसूस होता है कि कवि आपसे बोल रहा है, बतिया रहा है। जहाँ अपनी 'गीतफरोश कविता में कवि ने अपने फिल्मी दुनिया में बिताये समय को याद कर कवि के गीतों का विक्रेता बन जाने की विडम्बना को मार्मिकता के साथ कविता में ढाला है वहीं 'सतपुड़ा के जंगल जैसी कविता सुधी पाठकों को एक अछूती प्रकृति की सुन्दर दुनिया में लेकर चलती है। उनकी कविताएँ गेय हैं और पाठकों को ताउम्र स्मरण रहती हैं।

वे गूढ़ बातों को भी बहुत ही आसानी और सरलता के साथ अपनी कविताओं में रखते थे। नई कविताओं में उनका काफी योगदान है। उनका सादगी भरा शिल्प अब भी नये कवियों के लिए चुनौती और प्रेरणास्रोत है। वे जनता की बात को जनभाषा में ही रखते थे। उनकी कविताओं में नये भारत का स्वप्न झलकता है। उनकी कविताएँ परिवर्तन और सुधार की अभिव्यक्ति हैं। वे आपातकाल में विरोध में खड़े हो गए और विरोध स्वरूप प्रतिदिन तीन कवितायें लिखते थे। वस्तुतः वे कवियों के कवि थे।

10

अज्ञेय

सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' को कवि, शैलीकार, कथा-साहित्य को एक महत्त्वपूर्ण मोड़ देने वाले कथाकार, ललित-निबन्धकार, सम्पादक और अध्यापक के रूप में जाना जाता है। इनका जन्म 7 मार्च 1911 को उत्तर प्रदेश के कसया, पुरातत्त्व-खुदाई शिविर में हुआ। बचपन लखनऊ, कश्मीर, बिहार और मद्रास में बीता। बी.एससी. करके अंग्रेजी में एम.ए. करते समय क्रांतिकारी आन्दोलन से जुड़कर बम बनाते हुए पकड़े गये और वहाँ से फरार भी हो गए। सन् 1930 ई. के अन्त में पकड़ लिये गये। अज्ञेय प्रयोगवाद एवं नई कविता को साहित्य जगत में प्रतिष्ठित करने वाले कवि हैं। अनेक जापानी हाइकु कविताओं को अज्ञेय ने अनूदित किया। बहुआयामी व्यक्तित्त्व के एकान्तमुखी प्रखर कवि होने के साथ-साथ वे एक अच्छे फोटोग्राफर और सत्यान्वेषी पर्यटक भी थे।

जीवन परिचय

प्रारंभिक शिक्षा-दीक्षा पिता की देख रेख में घर पर ही संस्कृत, फारसी, अंग्रेजी और बांग्ला भाषा व साहित्य के अध्ययन के साथ हुई। 1925 में पंजाब से एंट्रेंस की परीक्षा पास की और उसके बाद मद्रास क्रिस्चन कॉलेज में दाखिल हुए। वहाँ से विज्ञान में इंटर की पढ़ाई पूरी कर 1927 में वे बी.एससी. करने के लिए लाहौर के फॅरमन कॉलेज के छात्र बने। 1929 में बी. एससी. करने के बाद

एम.ए. में उन्होंने अंग्रेजी विषय लिया, पर क्रांतिकारी गतिविधियों में हिस्सा लेने के कारण पढ़ाई पूरी न हो सकी।

कार्यक्षेत्र

1930 से 1936 तक विभिन्न जेलों में कटे। 1936-37 में सैनिक और विशाल भारत नामक पत्रिकाओं का संपादन किया। 1943 से 1946 तक ब्रिटिश सेना में रहेय इसके बाद इलाहाबाद से प्रतीक नामक पत्रिका निकाली और ऑल इंडिया रेडियो की नौकरी स्वीकार की। देश-विदेश की यात्राएं कीं। जिसमें उन्होंने कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय से लेकर जोधपुर विश्वविद्यालय तक में अध्यापन का काम किया। दिल्ली लौटे और दिनमान साप्ताहिक, नवभारत टाइम्स, अंग्रेजी पत्र वाक् और एवरीमैंस जैसी प्रसिद्ध पत्र-पत्रिकाओं का संपादन किया। 1980 में उन्होंने वत्सलनिधि नामक एक न्यास की स्थापना की जिसका उद्देश्य साहित्य और संस्कृति के क्षेत्र में कार्य करना था। दिल्ली में ही 4 अप्रैल 1987 को उनकी मृत्यु हुई। 1964 में आँगन के पार द्वार पर उन्हें साहित्य अकादमी का पुरस्कार प्राप्त हुआ और 1978 में कितनी नावों में कितनी बार पर भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार।

प्रमुख कृतियां

कविता संग्रह–भग्नदूत 1933, चिन्ता 1942, इत्यलम् 1946,हरी घास पर क्षण भर 1949, बावरा अहेरी 1954, इन्द्रधनुष रौंदे हुये ये 1957,अरी ओ करुणा प्रभामय 1959, आँगन के पार द्वार 1961, कितनी नावों में कितनी बार (1967), क्योंकि मैं उसे जानता हूँ (1970), सागर मुद्रा (1970), पहले मैं सन्नाटा बुनता हूँ (1974), महावृक्ष के नीचे (1977), नदी की बाँक पर छाया (1981), प्रिजन डेज एण्ड अदर पोयम्स (अंग्रेजी में, 1946)।

कहानियाँ–विपथगा 1937, परम्परा 1944, कोठरी की बात 1945, शरणार्थी 1948, जयदोल 1951

उपन्यास–शेखर एक जीवनी- प्रथम भाग(उत्थान)1941, द्वितीय भाग (संघर्ष)1944, नदी के द्वीप 1951, अपने अपने अजनबी 1961।

यात्रा वृतान्त– अरे यायावर रहेगा याद? 1943, एक बूँद सहसा उछली 1960।

निबंध संग्रह–सबरंग, त्रिशंकु, आत्मनेपद, आधुनिक साहित्य– एक आधुनिक परिदृश्य, आलवाल।

आलोचना– त्रिशंकु 1945, आत्मनेपद 1960, भवन्ती 1971, अद्यतन 1971 ई.।

संस्मरण– स्मृति लेखा

डायरियां– भवंती, अंतरा और शाश्वती।

विचार गद्य– संवत्सर

नाटक– उत्तरप्रियदर्शी

जीवनी– रामकमल राय द्वारा लिखित शिखर से सागर तक

संपादित ग्रंथ– आधुनिक हिन्दी साहित्य (निबन्ध संग्रह)1942, तार सप्तक (कविता संग्रह) 1943, दूसरा सप्तक (कविता संग्रह)1951, तीसरा सप्तक (कविता संग्रह), सम्पूर्ण 1959, नये एकांकी 1952, रूपांबरा 1960।

उनका लगभग समग्र काव्य सदानीरा (दो खंड) नाम से संकलित हुआ है तथा अन्यान्य विषयों पर लिखे गए सारे निबंध सर्जना और सन्दर्भ तथा केंद्र और परिधि नामक ग्रंथों में संकलित हुए हैं। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं के संपादन के साथ-साथ अज्ञेय ने तारसप्तक, दूसरा सप्तक और तीसरा सप्तक जैसे युगांतरकारी काव्य संकलनों का भी संपादन किया तथा पुष्करिणी और रूपांबरा जैसे काव्य-संकलनों का भी। वे वत्सलनिधि से प्रकाशित आधा दर्जन निबंध-संग्रहों के भी संपादक हैं। प्रख्यात साहित्यकार अज्ञेय ने यद्यपि कहानियां कम ही लिखीं और एक समय के बाद कहानी लिखना बिलकुल बंद कर दिया, परंतु हिन्दी कहानी को आधुनिकता की दिशा में एक नया और स्थायी मोड़ देने का श्रेय भी उन्हीं को प्राप्त है। निस्संदेह वे आधुनिक साहित्य के एक शलाका-पुरूष थे जिसने् हिंदी साहित्य में भारतेंदु के बाद एक दूसरे आधुनिक युग का प्रवर्तन किया।

अज्ञेय रचनावली

अज्ञेय रचनावली के 18 खंडों में उनकी समस्त रचनाओं को संग्रहित करने का प्रयास किया गया है। इसके संपादक कृष्णदत्त पालीवाल हैं।

इन खंडों की सामग्री का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है-

काव्य

काव्य

कहानियाँ

उपन्यास
उपन्यास
उपन्यास
भूमिकाएँ
यात्रा–वृत्त
डायरी
निबन्ध
निबन्ध
निबन्ध
निबन्ध
संस्मरण, नाटक, निबन्ध
साक्षात्कार
साक्षात्कार और पत्र
अनुवाद
अनुवाद

अज्ञेय का प्रकृति काव्य

अज्ञेय की काव्य विशेषताओं को अगर हम गिनाना चाहें तो पाते हैं कि उनकी कविताओं में आवेग की जगह सर्जनात्मकता, खरी अनुभूति, लोक–संस्कृति, एक तरह की रहस्यात्मकता, मौन और सन्नाटा तथा विराट तथा साधारण का मेल दिखाई पड़ता है। अज्ञेय की काव्य भाषा में निरंतर एक उदासीनता दिखाई पड़ती है। उनकी आरंभिक कविताओं की तुलना बाद की कविताओं से करें तो पाएँगे कि उनकी काव्य भाषा धीरे–धीरे सर्जनात्मक और अनुभूति प्रवण होती गई है। उनका बिंब विधान भी अत्यंत संश्लिष्ट और सक्षम है। भाषा को लेकर अज्ञेय अत्यंत सजग हैं।

अज्ञेय में शुरू से ही प्रकृति के प्रति गहरा लगाव रहा है। अपनी 'आत्मकथा में अज्ञेय ने लिखा है। 'दुनिया में इतना कुछ देखने को पड़ा है–क्षण–क्षण परिवर्तित प्रकृति वेश जिसे उसने आँख भर देखा। इसे देखने से उसको इतना अवकाश कहाँ कि वह निगाह अपनी ओर मोड़े। वह तो जितना कुछ देखता है उससे भी आगे बढ़ने की विवशता में देता है मन को दिलासा, पुनः आऊँगा । भले ही बरस दिन अनगिनत युगों के बाद।'

अज्ञेय का जन्म खंडहरों में एक खुदाई शिविर में हुआ था। उनका बचपन भी वनों और पर्वतों में बिखरे हुए पुरातत्त्वावशेषों के मध्य बीता और इन्हीं के बीच उन्होंने आरंभिक शिक्षा ग्रहण की। इस दौरान वे सदा अपने पुरातत्त्वज्ञ पिता के साथ-बीच में बाकी परिवार से। माँ और भाइयों से अलग रहते रहे। पिता खुदाई के काम में लगे रहते थे और अज्ञेय अधिकतर अकेले। इस प्रकार वे बचपन से ही एकांत के अभ्यासी हो गए थे। एकांतजीवी होने के कारण देश और काल के आयाम का उनका बोध कुछ अलग ढंग का है। उन्होंने स्वयं लिखा है कि उन्हें और बहुत कम चीजों से इतनी अकुलाहट होती है जितनी लगातार लंबी अरसे तक उनके एकांत में व्याघात पड़ने से। जेल में अपने सहकर्मियों के दिन-रात के अनिवार्य साहचर्य से त्रस्त होकर उन्होंने स्वयं काल कोठरी की माँग की थी और महीनों उसमें रहते रहे। उन दिनों वे घंटों निश्चल बैठे रहते, इतने निश्चल कि चिड़ियाँ उनके कंधों पर बैठ जाएँ या कि गिलहरियाँ उनकी टाँगों पर से फाँदती निकल जाएँ। उन्होंने लिखा है कि बड़ों को उनके निकट आना भले ही कठिन जान पड़े, पशु-पक्षी और बच्चे उनसे बड़ी जल्दी हिल जाते है। पशु उन्होंने गिलहरी के बच्चे से तेंदुए के बच्चे तक पाले हैं। पक्षी बुलबुल से मोर-चकोर तक, बंदी इनमें से दो-चार दिन से अधिक किसी को नहीं रखा। उसकी निश्चलता ही उन्हें आश्वस्त कर देती है। लेकिन गति का उनके लिए दुर्दांत आकर्षण है। आकर्षण है एक तरह की ऐसी लय युक्त गति का। जैसे घुड़दौड़ के घोड़े की गति, हिरन की छलाँग या अच्छे तैराक का अंग संचालन या शिकारी पक्षी के झपट्टे की या सागर की लहरों की गति। उनके लेखन में विशेष रूप में यह आकर्षण मुखर लय युक्त गति के साथ साथ उगने या बढ़ने वाली हर चीज में, उसमें विकास की बारीक से बारीक क्रिया में अज्ञेय को बेहद दिलचस्पी है, वे चीजें छोटी हो या बड़ी चींटी या पक्षी हों या वृक्ष और हाथी, मानव-शिशु हो या नगर और कस्बे का समाज। अज्ञेय नगर के कोलाहल से भागकर प्रकृति में शरण चाहते हैं। कृत्रिमता से मुक्त सहज जीवन के वे आकांक्षी हैं। उनकी एक चर्चित कविता है। 'हरी घास पर क्षण भर'। इसमें वे कहते हैं।

हो प्रकृतस्थ–तनो मत कटी-छँटी उस बाड़ सरीखी,
नमो, खुल खिलो, सहज मिलो
अंत:स्मित, अंत.संयत हरी घास-सी।
क्षण भर भुला सकें हम
नगर की बेचैन बुदकती गड्ड-मड्ड अकुलाहट

और न मानें उसे पलायन,
क्षण भर देख सकें आकाश, धरा, दूर्वा, मेघाली,
पौधे, लता दोलती, फूल, झरे पत्ते, तितली.भुनगे,
फुनगी पर पूँछ उठाकर
इतराती छोटी सी चिड़िया ,
और न सहसा चोर कह उठे मन में।
प्रकृतिवाद है स्खलन
क्योंकि युग जनवादी है। क्षण भर हम न रहें रहकर भी,
सुने गूँज भीतर के सूने सन्नाटे में किसी दूर सागर की लोल लहर की
जिसे सीपी सदा सुना करती है।

इस कविता में प्रकृति के कितने कार्य व्यापार एक साथ प्रतिफलित होते देखते हैं। प्रकृति, पशु और मनुष्य का सहज साहचर्य और संगति भी यहाँ सुस्पष्ट दिखती है।

क्षणभर अनायास हम याद करें
तिरती नाव नदी में,
धूल भरे पथ पर आषाढ़ की भभक, झील में साथ तैरना,
हँसी अकारण खड़े महावट की छाया में,
बदन घाम से लाल, स्वेद से जमी अलट.लट,
चीड़ों का वन, साथ-साथ दुलकी चलते दो घोड़े,
गीली हवा नदी की, फूले नथुने, भर्राई सीटी स्टीमर की
खंडहर, गुथित उँगलियाँ, बाँसे का मधु,
डाकि, के पैरों की चाप
अधजाती बबूल की धूल मिली-सी गंध
झरा रेशम शिरीष का, कविता के पद
मस्जिद के गुंबद के पीछे सूर्य डूबता धीरे-धीरे
झरने के चमकीले पत्थर, मोर-मोरनी, घुँघरू
संथाली झमुर का लंबा कसक-भरा आलाप
रेत का आह की तरह धीरे-धीरे खिंचना, लहरें,
आँधी– पानी,
नदी किनारे की रेती पर बित्ते भर की छाँह झाड़ की
अंगुल-अंगुल नाप नाप कर तोड़े तिनकों का समूह,

लू,
मौन।

एक पूरी चित्र शृंखला या कोलाज बनाते हैं अज्ञेय . जिसमें पशु, पक्षी, मनुष्य, प्रकृति और तमाम चीजें शामिल हैं और इसके माध्यम से वे हमें मुक्ति और सीमाहीन खुलेपन के बोध की तरफ ले जाते हैं।

अज्ञेय को पहाड़ भी उतना ही प्रिय है, जितना सागर। शांत सागर-तल उन्हें विशेष नहीं मोहता, चट्टानों पर लहरों का घात-प्रतिघात ही उन्हें मुग्ध करता है। उन्होंने एक जगह लिखा है कि वे हिमालय के पास भी रहना चाहते हैं, पर सागर के गर्जन से दूर भी नहीं रहना चाहते।

अज्ञेय में अद्‌भुत प्राकृतिक सौंदर्यानुभूति है। उनमें छायावादी प्रकृति काव्य की सभी विशेषताएँ, चाहे वह ऐंद्रिय बोध हो, सांगीतिक सूक्ष्मता हो, विशेषण विपर्यय हो या गहन संवेदनशीलता अधिक विकसित रूप में मिलती हैं। उनमें निराला की शब्द चेतना और सांगीतिक स्वरबोध तथा पंत का रंगबोध, गंधबोध, ध्वनिबोध एक साथ हम पा सकते हैं।

'बावरा अहेरी' की ये पंक्तियाँ देखें –

झर झर झर
अप्रतिहत स्वर
जीवन की गति आती.जाती
झर
नदी कुल के चल-नरसल
झट उमड़ा हुआ नदी का जल
ज्यों क्वाँरेपन की केंचुल में
यौवन की गति उद्दाम प्रबल

अज्ञेय का वस्तुओं का प्रेक्षण और प्रकृति पर्यवेक्षण अत्यंत सूक्ष्म और तीक्ष्ण है। आकृति, ध्वनि, गंध और रंगों की काव्य में ऐसी पकड़ और उनकी प्रस्तुति बहुत कम कवियों में दिखाई पड़ती हैं।

एक चित्र देखें –

सूप-सूप भर धूप कनक
यह सूने नभ में गई बिखर
चौंधाया बीन रहा है
उसे अकेला एक कुरर।

अज्ञेय की कविताओं में संवेदना की अतल गहराई मिलती है। उनकी संवेदना समस्त प्रकृति में लय होती चलती है। इसीलिए वह लिखते हैं,

मैं सोते के साथ बहता हूँ
पक्षी के साथ गाता हूँ
वृक्षों के कोंपलों साथ थरथराता हूँ
और उसी अदृश्य क्रम में, भीतर ही भीतर
नए प्राण पाता हूँ।

वह प्रकृति के संसर्ग में ही अपने 'स्व को पहचानते हैं, क्योंकि वह स्व उसी प्रकृति का अंश है, जिसके संसर्ग में आकर वह अपनी पहचान पाते हैं। रमेश चंद्र शाह ने 'अज्ञेय विनिबंध में ऐसी कविताओं के उदाहरण दिए हैं, जहाँ प्रकृति एक उच्चतर नैतिक बोध के ज्वलंत दृष्टांत की तरह आती है। 'इत्यलम् संग्रह के बाद की कविताओं में अज्ञेय में प्रकृति-निरीक्षण सूक्ष्मतर हुआ है।

'कतकी पूतों की पंक्तियाँ .
पकी ज्वार से निकल शसों कि जोड़ी गई फँलागती।
सन्नाटे में बाँक नदी की जगी चमक कर झाँकती।।

उनके इस सूक्ष्म निरीक्षण की गवाह हैं। अज्ञेय की पावस प्रातः शिलाङ और 'दूर्वाचल जैसी कविताओं में अभिव्यक्ति की तीक्ष्णता, भाव सघनता और जीवंत बिंबों को देखा जा सकता है। यहाँ 12 जुलाई 1947 को लिखी गई उनकी 'पावस-प्रात, शिलाङ कविता पढ़ना समीचीन होगा .

भोर बेला, सिंची छत से ओस की टिप.टिप। पहाड़ी काक
की विजन को पकड़ती-सी क्लोत बेसुर डाक .
श्हाक्! हाक्! हाक!
मत सँजो यह स्निग्ध सपनों का अलस सोना .
रहेगी बस एक मुट्ठी खाक
'धाक धाक धाक

यह कविता अज्ञेय की लयात्मक संवेदना के वैशिष्ट्य को सूचित करती है।

अज्ञेय के प्रकृति काव्य के बारे में रमेश चंद्र शाह की टिप्पणी है। 'पंत के बाद शायद ही किसी कवि का प्रकृति संवेदन इतना प्रगाढ़, इतना भरा-पूरा और फिर भी इतने जोखिम से निखरा हुआ हो, जितना अज्ञेय का।'लियट के साथ अज्ञेय की तुलना करते हुए शाह ने लिखा है, 'एलियट के विपरीत अज्ञेय का

संबंध प्रकृति के साथ अधिक सहज और घनिष्ठ है और पर पक्ष उनकी रचनाओं में ही नहीं, चिंतन के स्तर पर भी बराबर अभिव्यक्त होता रहा है।'

अज्ञेय रोजमर्रा की जिंदगी से, लोक जीवन से और प्रकृति से बिल्कुल अनछु, और टटके बिंब लेते हैं और उनके माध्यम से हमारे भीतर एक अंत:यथार्थ का बोध जगाते हैं। वे जीवन के इर्द-गिर्द फैले सौंदर्य संसार में गहरी रुचि लेते हैं। पंडित विद्यानिवास मिश्र ने लिखा है, 'भाई के लिए प्रकृति न तो शौक थी न पलायन। प्रकृति उनकी जिंदगी का एक हिस्सा थी। वे फूलों को सजाने की वस्तु नहीं मानते थे। वे उनमें रहना चाहते थे और उनकी जीवन यात्रा में कुटुंबी की तरह रचना-बसना चाहते थे।'

अज्ञेय की प्रकृति संबंधी कविताओं को जब उनके पहले की प्रकृति संबंधी कविताओं के परिप्रेक्ष्य में देखते हैं तो दोनों में बुनियादी फर्क देखने को मिलता है। अज्ञेय प्रकृति का एकाग्र वर्णन नहीं है। वहाँ हम प्रकृति और व्यक्ति के संबंधों को एक तारतम्य में देखने की कोशिश हैं। यह संबंध छायावादी कविता के प्रकृति और मनुष्य के अमूर्त और रहस्यमय संबंध जैसा भी नहीं है। अज्ञेय के यहाँ छायावादी भावबोध से परे का निरंतर प्रयास है। अज्ञेय का प्रकृति से गहरा और व्यापक परिचय है, जो उन्हें अपने विविधतापूर्ण जीवन से मिला। अपनी कविताओं में वे प्रकृति को नए तथ्य और ज्ञान के आलोक में प्रस्तुत करते हैं, एक नई वैज्ञानिक दृष्टि के साथ। उनकी प्रकृति कविता सौंदर्य बोध के नए मानक गढ़ती है। नंद दुलारे बाजपेयी ने लिखा है, 'अज्ञेय की नई काव्य सृष्टि में दो-तीन बातें हमारा ध्यान विशेष रूप से आकर्षित करती हैं। एक है, इस काव्य-सृष्टि में प्रकृति की गतियों, रूपों और मुद्राओं का साफ अंकन। यद्यपि ये रूप, गतियाँ और मुद्राएँ लेखक के आंतरिक भावना से संपृक्त हैं, पर उनमें यथार्थ का पक्ष भी पूरी तरह भास्कर होता है।'

अज्ञेय के लिए कविता फोटोग्राफी नहीं है, इसलिए उनके यहाँ प्रकृति के तटस्थ, निर्लिप्त दृश्यचित्र कम हैं। प्रकृति के संसर्ग में कवि में संवेदना का विस्तार होता है और जीवन के नए अर्थ उद्घाटित होते हैं। वह कविता में प्रकृति को बरतते हुए उसे एक नई अर्थवत्ता देते हैं।

अज्ञेय की कविता में प्रकृति के सुंदर प्रभाव चित्र देखा जा सकते हैं। प्रकृति से वे प्रतीकों को ग्रहण करते हैं, जो एक जीवन दर्शन सामने रखते हैं। उनके यहाँ प्रकृति के शांत-सौम्य रूप अधिक मुखर हैं, जो उनके परिवेश से गहरे जुड़े हुए हैं। अज्ञेय तक आकर कवि का रिश्ता प्रकृति से वही नहीं रहता

जो पहले था। एक मानवीय दृष्टि का विकास उनकी कविता में देखने को मिलता है। अब प्रकृति काव्य का आलंबन न रहकर उद्दीपन होती जाती है और उसका फलक भी व्यापक होता जाता है। इसे उनकी एक छोटी सी कविता 'खुल गई नाव में देखा जा सकता है।

खुल गई नाव
घिर आई संध्या, सूरज डूबा सागर तीरे धुँधले पड़ने से जल-पंछी
भर धीरज से मूक लगे मँडलाने,
सूना तारा उगा, चमक कर, साथी लगा बुलाने।
तब फिर सिहरी हवा, लहरियाँ काँपी,
तक फिर मूर्छित व्यथा विदा की जागी धीरे-धीरे।

ढलती शाम के साथ विदा की मूर्छित व्यथा का धीरे-धीरे जागना। प्रकृति और व्यक्ति के संबंधों को ,क नई दीप्ति से उद्भासित करता है। प्रकृति के विविध चित्रों के साथ मानवीय भावनाओं के संगुफन की कला में अज्ञेय माहिर हैं। प्रकृति तो मात्र बहाना है, उसके माध्यम से व्यक्ति। मन में जो घर रहा है, या जो संकेतित है, वही महत्वपूर्ण है। वैकल्पिक अनुभव की तीव्रता प्रकृति के रूप को स्पष्ट करती है। एक द्वंद्वात्मक संबंध जीवन और प्रकृति में है। अज्ञेय की कविता 'तुम कदाचित् न भी जानो में इस रिश्ते की पहचान की जा सकती है।

मंजरी की गंध भारी हो गई है
अलस है गुंजार भौंरे की। अलस और उदास।
क्लांत पिक रह-रह तड़प कर कूकता है। जा रहा मधुमास।
मुस्कराते रूप।
तुम कदाचित न भी जानो। यह विदा है।
ओस-मधुकण–वस्त्र सारे सीझ कर श्लथ हो गए हैं।
रात के सहमें चिहुँकते बाल-खग अब निडर हो चुप हो गए हैं।
अटपटी लाली उषा की हुई प्रगल्भ, विभोर।
उमड़ती है लौ दि, की, जा रहा है भोर।
ओ विहँसते रूप।
तुम कदाचित् न भी जानो। यह विदा है।

अज्ञेय प्रकृति को जीवन के तनावों और संघर्षों के साथ रखकर देखते हैं। डॉ. राम विलास शर्मा ने उनकी प्रकृति-चित्रण के बारे में लिखा है, 'अज्ञेय का

प्रकृति से वह रागात्मक संबंध है, जो उनके काव्य की श्रेष्ठ उपलब्धि है। प्रकृति. प्रेम अज्ञेय में नैसर्गिक है, खेतों-खलिहानों से दूर साधारणत: उनका मन ऐसे प्राकृतिक दृश्यों में रमता है, जो सामान्य हिंदी पाठक के लिए असाधारण होते हैं। शब्दों और उपमानों की तरह वह इस तरह के दृश्य भी काफी अनुसंधान के बाद प्राप्त करते हैं।'

अज्ञेय बहुत बार अपनी संवेदना को सृष्टि। रचना के साथ संयुक्त करके चलते हैं। जीवन को वह इस तरह देखते है जैसे सागर में एक मछली हो। वह अंतहीन काव्य के फलक पर एक चित्र टाँक कर उसे व्यक्त करना चाहते है। उनके भीतर ही समस्त सृष्टि जग जाती है। जो कुछ है, भीतर ही है। हरी भरी धरती, विशाल आकाश, रंग फूल और कोंपले। यही सब तो सृष्टि है। सृष्टि की सत्ता अलग-अलग नहीं है। कवि ने जीवन की अनुभूति को प्रकृति से जोड़ दिया है। सुख और दुख की अनुभूतियाँ प्रकृति-व्यापारों से जुड़ जाती हैं। प्रकृति की हलचलों के मध्य मनुष्य ने अपना एक संसार बसा लिया हैं, जहाँ प्रकृति और भौतिक जीवन के बीच निरंतर आवाजाही है।

एक कविता में कवि धूप से गर्मी, चिड़िया से मिठास, घास की पत्ती से हरियाली और किरणों से उजास माँगता है। हवा से खुलापन और एक साँस, लहर से उल्लास और आकाश से एक झपकती पलक भर असीमता। वह प्रकृति से इन सब चीजों को पाता है और यही जीवन है।

सबसे उधार माँगा, सबने दिया
यों मैं जिया और जीता हूँ
क्यों कि यह सब तो जीवन है।
गरमाई, मिठास, हरियाली, उजाला,
गंधवाही मुक्त खुलापन,

जब हम अज्ञेय के प्रकृति काव्य पर विचार कर रहे हैं तो स्वयं अज्ञेय प्रकृति काव्य तथा काव्य-प्रकृति के बारे में क्या सोचते थे, यह जानना भी महत्वपूर्ण होगा। उन्होंने श्रूपांबरा की भूमिका में लिखा है, 'प्रकृति वर्णन का वृत्त कालिदास में समय से पूरा घूम गया है। कालिदास 'प्रकृति के चौखटे में मानवी भावनाओं का चित्रण करते थे, आज का कवि 'समकालीन मानवीय संवेदना के चौखटे में प्रकृति को बैठाता है। और क्योंकि समकालीन मानवीय संवेदना बहुत दूर तक विज्ञान की आधुनिक प्रवृत्ति से मर्यादित हुई है, इसलिए यह भी कहा जा सकता है कि आज का कवि प्रकृति को विज्ञान की अधुनातन अवस्था के

चौखटे में प्रकृति को बैठाता है। ऋत का स्थान वैज्ञानिक शोध ने ले लिया है, किंतु ऋतु सन्ातन और आत्यंतिक था, वैज्ञानिक शोध के दिनमान बदते रहे, फलत: 'प्रकृति का सान्निध्य नए कवि को पहले का सा आश्वस्त भाव नहीं देता, उसकी आस्थाओं को पुष्ट नहीं करता। इसके लिए वह नए प्रतीकों की खोज करता है।'

जाहिर है जब यह वक्तव्य अज्ञेय दे रहे होंगे जो उनकी खुद की कविताएँ भी उनके समक्ष होंगी। वह मानते हैं कि एक विशिष्ट अर्थ में छायावाद का प्रकृति काव्य अपनी सीमाओं के बावजूद अंतिम प्रकृति काव्य का अर्थात छायावादोत्तरकाल में प्रकृति काव्य में गुणात्मक परिवर्तन हुआ जिसकी चर्चा उनके वक्तव्य में है। अज्ञेय की काव्य कृतियों पर नजर डालें तो पाएँगे कि आरंभ में प्रकृति से संबंधित उनकी रचनाएँ कम हैं, लेकिन 'हरी घास पर क्षण भर और 'बावरा अहेरी में इनकी संख्या अधिक है। प्रकृति संबंधी कविताओं में कुछ तो विशुद्ध दृश्य चित्र हैं, कुछ में प्राकृतिक उपादानों के साथ कवि के भावात्मक संबंधों का रूपायन है और कुछ में प्राकृतिक दृश्यों से आत्मपरक संकेत निकाले गए हैं। 'हरी घास पर क्षण भर संग्रह में 'दूर्वाचल', 'सो रहा हैं झोंप', 'क्वाँर की बयार', 'कतकी पूतो आदि प्रकृति से संबंधित रचना, है। 'दूर्वाचल कविता में प्रकृति के साथ एक मौन संवाद और उसके प्रति एक तीव्र आकर्षण का भाव है। इसमें उपमान नए हैं। मानसिक भावों से प्राकृतिक वस्तुओं की उपमा दी गई है।

'पार्श्व गिरि का नम्र, चीड़ों में
डगर चढ़ती उमंगों-सी
बिछी पैरों में नदी ज्यों दर्द की रेखा।
विहग.शिशु मौन नीड़ों में

'.बावरा अहेरी में 'प्रथम किरण', 'वसंत गीत', 'ये मेघ साहसिक सैलानी', 'शरद साँझ के पंछी', 'तुम फिर आ गए क्वाँर', 'चाँदनी जी लो', 'साँझ दर्शन', 'उषा दर्शन और अंधड़ प्रकृति संबंधी रचनाएँ हैं। 'चाँदनी जी लो में जीवन के उल्लास को दर्शाया गया है, जहाँ शरद चाँदनी में मुग्ध में कवि की चेतना चाँदनी की अनुभूति से अभिन्न हो गई है अर्थात, यहाँ दृश्य और दृष्टा एकाकार हो गए हैं–

शरद चाँदनी
बरसी

अँजुरी भर पीलो
ऊँघ रहे हैं तारे

अज्ञेय की बहुत सी कविताओं में प्राकृतिक वस्तुओं को प्रतीकात्मकता प्रदान कर उसमें आत्मचेतना का अंकन किया गया है। उनकी अंधड़ कविता गहन भावावेग के अभिव्यक्ति का प्रतीक बन गई हैं–

रसने दो
आकाश का विदग्ध उर
उमसने् दो कसने् दो
दुर्निवार मेघ को

'इंद्रधनु रौंदे हुए ये' में 'टेसू' 'वैशाख की आँधी', 'मलाबार का ,क दृश्य' और सूर्यास्त' प्रकृति संबंधी रचनाएँ हैं। अगर अज्ञेय की कविताओं में चित्रोपमता' को देखना हो तो इसका एक उत्कृष्ट उदाहरण 'मलाबार का एक दृश्य' है। विशुद्ध दृश्य शब्दों के माध्यम से सौंदर्य का उद्घाटन –

तालों के जाल
घने, कहीं लदे-छदे
कहीं ठूठ तनेय केलों के कुंज
बने, सीसम की मेंड़ बंध
कवरी में खोंस फूल
गुड़हल का सुलगे अंगार सा।

प्रकृति के मामले में अज्ञेय की जितनी रेंज है, उतनी किसी और की नहीं। प्रकृति के इतने विविध रूपों और मानसिक रूपों को संग्रहित कर कविता में ढालने वाला नई कविता का कोई दूसरा कवि दिखाई नहीं पड़ता है। अज्ञेय के यहाँ प्रकृति नाना रूपों में विविध भावों के साथ आती है। उनके यहाँ एक ओर तो प्रकृति के उल्लासपूर्ण और आहलादप्रद दृश्य हैं तो दूसरी और कारुणिक और गंभीर। उनकी कम ही रचनाएँ होंगी, जहाँ प्रकृति के बाह्य रूप का आलंबनगत चित्रण मिलता हो, अधिकांश में दृश्य की किसी चिदवृत्ति या मनोविकार के साथ उसका संबंध जुड़ा हुआ है। 'अरी ओ करुणा प्रभामय' की श्रात में गाँव', धूप, वसंत, 'पगडंडी', 'नदी तट–एक चित्र' आदि कविताएँ इसी तरह की हैं।

सुनहली धूप के बिखरने के चित्र को अज्ञेय यूँ शब्द देते हैं–

सू-सूप भर
धूप-कनक

यह सूने नभ में गई विखर
चौंधाया
बीन रहा है
उसे अकेला एक कुरर।

समुद्र, नदी, वन, वृक्ष, पक्षी, रेगिस्तान, सन्नाटा, मौन, दु:ख, करुणा जैसी मानवीय अस्तित्त्व से जुड़ी बुनियादी चीजें अज्ञेय की कविता में बार-बार लौटती है। वस्तुत: उनकी कविता प्रकृति और मनुष्य के शाश्वत संबंधों का पुनराविस्तार करती है।

अज्ञेय के भाषा चिंतन के आलोक में उनकी काव्य भाषा

सुनो कवि! भावनाएँ नहीं है सोती
भावनाएँ खाद हैं केवल
जरा उनको दबा रखो
जरा सा और पकने दो
ताने और तचने दो।' (अज्ञेय, हरी घास पर क्षण भर)

यह सर्वविदित तथ्य है कि भाषा संप्रेषण का सशक्त साधन है और सामाजिक धरोहर भी। भाषा ही वह चीज है, जो मनुष्य को जैविक जंतु से समाज-सांस्कृतिक प्राणी के रूप में परिवर्तित करती है। भाषा के संबंध में अज्ञेय की मान्यता है कि 'मानवीय संस्कृति की सबसे मूल्यवान उपलब्धि भाषा है और भाषा ही समाज जीवन का - मध्यवर्ती जीवन का सबसे अधिक मूल्यवान उपकरण है। भाषा संपन्न मानव जीवन ही 'मानवीय मध्यवर्ती' होता है। भाषा के आविष्कार में मानवीय अस्मिता का आविष्कार होता है-उसकी सृष्टि होती है।' (अज्ञेय, सर्जना और संदर्भ, पृ.342)। इतना ही नहीं उन्होंने यह भी स्पष्ट किया है कि ''मैं' की पहचान भाषा के साथ बँधी हुई है, तो स्वाभाविक है कि यथार्थ की पहचान भी भाषा के साथ बँधी हुई है।' (अज्ञेय, आँखों देखी और कागद लेखी, पृ.22)।

यहाँ अज्ञेय के भाषा चिंतन के आलोक में उनकी काव्य भाषा पर दृष्टि केंद्रि करने का प्रयास किया जा रहा है। आज के समय में कविता के परंपरागत लक्षण - जैसे तुक, लय, छंद और अलंकार आदि धीरे धीरे लुप्त होते जा रहे हैं, तो ऐसी स्थिति में कविता को समझने के लिए काव्यभाषा ही सबसे अधिक महत्वपूर्ण आधार बन जाती है। इतना ही नहीं काव्यभाषा का विश्लेषण सिर्फ व्याकरणिक या सौंदर्यात्मक दृष्टि से करना काफी नहीं होगा, निश्चय ही इसके लिए दूसरी दृष्टि अपेक्षित है - पाठ विश्लेषण की।

उल्लेखनीय है कि मानव जीवन में सामान्य रूप से भाषा का प्रयोग कई स्तरों पर होता है। कुछ विद्वानों के अनुसार बोलचाल की भाषा और साहित्यिक भाषा में काफी अंतर है। पर ध्यान देने की बात है कि बोलचाल की भाषा जीवंत है और किसी भी देश की साहित्यिक भाषा में वहाँ के जन समुदाय की भाषा प्राय: पाई जाती है। यह इसलिए संभव है चूँकि साहित्यकार अपने परिवेश से ही शब्दों का चयन करता है। इस दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि 'साहित्यिक भाषा मूलत: बोलचाल की ही भाषा है, जो विभिन्न रचनाकारों की सृजन प्रक्रिया में समाहित होकार परिवर्तित होता है।' (रामस्वरूप चतुर्वेदीय 'काव्यभाषा का स्वरूप' काव्य भाषा पर तीन निबंधय पृ.81)।

अज्ञेय के व्यक्तित्त्व में भारतीय लोक जीवन और पश्चिम के बौद्धिक आभिजात्य का विलक्षण संतुलन है। उनकी संवेदना का मूल स्रोत भारतीय जन जीवन में है। उनको यह पीड़ा सालती रही कि उन्हें बोलीगत मुहावरे को आत्मसात करने का अवसर नहीं मिला अत: वे कहते हैं कि 'मुझे सभी कुछ मिला पर सब बेपेंदी का। शिक्षा मिली, पर उसकी नींव भाषा नहीं मिलीय आजादी मिली लेकिन उसकी नींव आत्मगौरव नहीं मिलाय राष्ट्रीयता मिली लेकिन उसकी नींव ऐतिहासिक पहचान नहीं मिली।' (अज्ञेय, अद्यतनय पृ. 83)। वे यह भी कहते हैं कि 'एक तरह से मेरी भाषा में सीमा और विशेषता भी आप पहचान सकते हैं। आरंभ से मेरी शिक्षा हिंदी में हुई - उस हिंदी में जिसका मैं इस समय उपयोग कर रहा हूँ, जिसमें पुस्तकें लिखी जाती हैं।' (अज्ञेय, आँखों देखी और कागद लेखी, पृ.19)। इसके बावजूद अज्ञेय की काव्य भाषा पर दृष्टि केंद्रित करें तो यह स्पष्ट होता है कि उनकी कविताओं में लोक भाषा की धरोहर समाहित है -

'मेरा भाव - यंत्र?
एक मचिया है सूखी घास - फूस की
उसमें छिपेगा नहीं औघड़ तुम्हारा दान -
साध्य नहीं मुझ से, किसी से चाहे सधा हो।'

'भाव - यंत्र' के लिए अज्ञेय ने 'सूखी घास - फूस की मचिया' का बिंबात्मक प्रयोग किया है। यह उनकी काव्य संवेदना के लोक उत्स की देन है।

यह संकेत किया जा चुका है कि वस्तुत: काव्य भाषा का आधार बोलचाल की ही भाषा है। अज्ञेय की काव्य भाषा के बारे में स्पष्ट करते हुए रामस्वरूप चतुर्वेदी कहते हैं कि 'अज्ञेय की कविता की भाषा में 'नॉन यू' तत्त्व (निम्नवर्गीय

जीवन से लिया गया शब्द समूह) प्रधान रहा है। प्रतीकों, बिंबों, अभिप्रायों के चयन और सामान्य शब्द प्रयोगों में उनकी दृष्टि अधिकतर लोक है जीवन की ओर उन्मुख दीख पड़ते है।' (रामस्वरूप चतुर्वेदीय काव्य भाषा का स्वरूप' काव्य भाषा पर तीन निबंध' पृ.83)। उदाहरण के लिए 'अरी ओ करुणा प्रभामय' में ठाठ फकीरी, घुड़का, झौंसी, कुलबुलाती, डाँगर जैसे प्रयोग देखे जा सकते हैं -

'अच्छी कुंठा रहित इकाई
साँचे - ढले समाज से
अच्छा
अपना ठाठ फकीरी
मँगनी के सुख - साज से।' (अच्छा खंडित सत्य)

अज्ञेय की कविताओं में लोक कथाओं, लोक गीतों और मुहावरों का प्रभाव भी दिखाई देता है। जैसे -

'बाँगर में
राजाजी का बाग है
चारों ओर दीवार है,
बीच बाग में कुआँ है
बहुत बहुत गहरा।'

दबे पाँव आना, मुँह चिढ़ाना, झींकते रहना, गाल बजाना, आकाश फाड़ना जैसे मुहावरों का प्रयोग भी अज्ञेय की कविताओं में सम्मिलित हैं -

'फूल खिलते रहे चुपचाप
मँजरी आई
दबे पाँव सकुचाती,
तड़फड़ाते रहे, करते रोर
मुँह चिढ़ाते रहे वन की शांति को
अविराम अनगिन झींकते झींगुर
भिखारी सब
बजाते गाल बगलें
फाड़ते आकाश'

इसी तरह एक और उदाहरण देखें -

'सुनी सी साँझ एक
दबे पाँव मेरे कमरे में आई थी

मुझको भी वहाँ देख
थोड़ा सकुचाई थी।'

अज्ञेय की काव्य भाषा पर विचार करते हुए रामदरश मिश्र ने कहा है कि 'अज्ञेय की भाषा के कई रूप हैं। एक रूप वह है, जो जीवन की अनुभूतियों की सहजता के कारण सहज है, लोक शब्दों, लोक प्रतीकों से युक्त है तथा सहज प्रवाहमय है। दूसरा रूप वह है, जो असहज प्रलंबित वाक्यों और विशेषण मालाओं से गुँफित तथा क्लिष्ट पदों से बोझिल है।' (डॉ.मदन गुलाटी, अज्ञेय की काव्य चेतना और सर्जना के क्षण, पृ.51)। तत्सम शब्दों की माला के बीच बोलीगत प्रयोगों को बिठाकर भी अज्ञेय अनेक स्थलों पर भाषिक चमत्कार उत्पन्न करते हैं -

'तेरे दोलन की लोरी पर झूँमूँ मैं तन्मय -
गा तू –
तेरी लय पर मेरी साँसें
भरें, पुरें, रीतें, विश्रांति पायँ।' (असाध्य वीणा)

किसी भी बात को, या विचार को अभिव्यक्त करने के लिए उचित शब्दों का चयन करना आवश्यक है। अज्ञेय यह मानते हैं कि कविता शब्दों में होती है और विचार भाषा में होता है। अत: वे कहते हैं कि 'मेरी खोज भाषा की खोज नहीं है, केवल शब्दों की खोज है। ... भाषा का मैं उपयोग करता हूँ। उपयोग करता हूँ लेखक के नाते, कवि के नाते और एक साधारण सामाजिक मानव प्राणी के नाते, दूसरे सामाजिक मानव प्राणियों से साधारण व्यवहार के लिए। इस प्रकार एक लेखक के नाते मैं कला सृजन के माध्यमों में सबसे अधिक वेध्य माध्यम का उपयोग करता हूँ - ऐसे माध्यम का जिसको निरंतर दूषित और संस्कारच्युत किया जाता रहता है। अथच उसका उपयोग मैं ऐसे ढंग से करना चाहता हूँ कि वह नए प्राणों से दीप्त हो उठे।' (अज्ञेय, आल-वाल' पृ.10-11)। इसीलिए वे अपनी अनुभूति को सामाजिक उपमानों के द्वारा व्यक्त करते हैं। उन्होंने जीवन की नश्वरता, निस्सारता और क्षणभंगुरता को अभिव्यक्त करने के लिए 'काँच के प्याले' का प्रयोग किया है -

'जीवन!
वह जगमग
एक काँच का प्याला था
जिसमें यह भरमाये हमने

भर रक्खा
तीखा भभके खिंचा उजाला था
कौंध उसी की से
तू फूट गया।'

यह उल्लेखनीय है कि काव्य भाषा का केंद्रीय तत्त्व बिंब विधान है। रामस्वरूप चतुर्वेदी के अनुसार 'कविता की भाषा का केंद्रीय तत्त्व भावचित्रों अथवा बिंबों का विधान है। कवि परंपरा में स्वीकृत भावचित्रों का प्रयोग अधिक नहीं करता, आवश्कता पड़ने पर सामान्य से सामान्य शब्द को एक विशिष्ट अर्थ देता है।' (रामस्वरूप चतुर्वेदीय काव्य भाषा का स्वरूपय काव्य भाषा पर तीन निबंध, पृ.85)। अगर यह कहा जाए कि अज्ञेय के काव्य में नवगठित बिंबों का व्यापक प्रयोग है तो यह अनुचित नहीं होगा। 'औद्योगिक बस्ती' शीर्षक कविता का एक अंश इस संदर्भ में द्रष्टव्य है -

'बंधी लीक पर रेलें लादे माल
चिंहुकती और रँभाती अफरा, डाँगर-सी
ठिलती चलती जाती हैं।
उद्यम की कड़ी-कड़ी में बंधते जाते मुक्तिकाम
मानव की आशाँ ही पल-पल
उसको छ्लती
जाती हैं।' (औद्योगिक बस्ती)

यहाँ अज्ञेय ने लदी मालगाड़ी के चित्र को 'चिंहुकती और रँभाती अफरा, डाँगर-सी ठिलती चलती' के माध्यम से बिंबित किया है। इससे यह चित्र स्पष्ट नजर आता है कि ठेठ देहाती इलाके में औद्योगिक बस्ती बसी हुई है। इतना ही नहीं, लदी मालगाड़ी के लिए 'अफरा, डाँगर' का जो दृश्य बिंब प्रयुक्त हुआ है इससे चित्र और भी स्पष्ट होता है।

अज्ञेय की कविताओं में निजी अनुभूतियाँ मुखरित हैं। अज्ञेय का अपने परिवेश से इतना ऐक्य है कि उनकी कविताओं में वह अनायास ही झाँकता रहता है, आँख मिचौनी खेलता रहता है। परिवेश की महत्ता को स्पष्ट करते हुए अज्ञेय ने स्वयं लिखा है कि 'आज का लेखक इस प्रकार अपने परिवेश से दबा है - जो कि वह स्वयं है और जितना ही अच्छा लेखक है, उतना ही अधिक वह अपना परिवेश है।' (अज्ञेय, आल-वाल, पृ.21)। इस संदर्भ में अज्ञेय की कविता 'बसंत गीत' का एक अंश देखें -

'सिरिस ने रेशम से वेणी बाँध ली
नीम के भी बौर में मिठास देख
हँस उठी है कचनार की कली!
टेसुओं की आरती सजा के
बन गई वधू वनस्थली।' (बसंत गीत)

अज्ञेय जैसे संवेदनशील कवि के लिए मौन भी अभिव्यंजना का माध्यम है। उनकी मान्यता है कि मौन के द्वारा भी संप्रेषण संभव है और काव्य रचना के लिए ढेर सारे शब्दों की जरूरत नहीं होती। इसीलिए वे कहते हैं –

'मौन भी अभिव्यंजना है –
जितना तुम्हारा सच है
उतना ही कहो।' (जितना तुम्हारा सच है)

इस संबंध में वे यह भी कहते हैं कि 'किसी भी समय की कविता को समझने के लिए – यह अत्यंत आवश्क है कि हम जानें कि काव्य 'अभिव्यक्ति' से भी अधिक 'संप्रेषण' है, और संप्रेषण की स्थितियों के संदर्भ में ही यह पड़ताल करें कि कविता क्या है। संप्रेषण की स्थितियों को समझे बिना काव्य का मूल्यांकन तो दूर, सही अर्थ-ग्रहण भी नहीं हो सकता – उसका कथ्य भी ठीक-ठीक नहीं पहचाना जा सकता।' (अज्ञेय, सर्जना के क्षण, भूमिका, कवि दृष्टि, पृ.11)। अज्ञेय की कविता 'भोर' को ही देख लें –

'भोर!
तुम!
आओ!
जीवन है।
आशी!' (भोर)

यह अपने आप में पूरी कविता है। इसमें भोर से संबंधित सारे उल्लास को अज्ञेय ने अन्-अभिव्यक्त छोड़ दिया है।

अज्ञेय की मान्यता है कि प्रत्येक शब्द के अपने वाच्यार्थ के अतिरिक्त अलग अलग लक्ष्यार्थ और व्यंग्यार्थ होते हैं, जो संदर्भ सापेक्ष हुआ करते हैं। वे कहते हैं कि 'शब्द अपने आप में संपूर्ण या आत्यंतिक नहीं है, किसी शब्द का कोई स्वयंभूत अर्थ नहीं है। अर्थ उसे दिया गया है, वह संकेत है जिसमें अर्थ की प्रतीपत्ति की गई है।' (अज्ञेय, नई कविता–प्रयोग के आयाम, तीसरा सप्तक

की भूमिकाय कवि दृष्टि, पृ.83)। उनकी प्रसिद्ध कविता 'साँप' के अंश का उदाहरण देखें –

'साँप
तुम सभ्य तो हुए नहीं
नगरों में बसना
भी तुम्हें नहीं आया
एक बात पूछूँ – उत्तर दोगे?
तब कैसे सीखा डसना
विष कहाँ पाया?' (साँप)

यहाँ कवि ने नागरिक सभ्यता की कृत्रिमता पर असंतोष व्यक्त किया है। इतना ही नहीं उनकी काव्य पंक्तियों में सूक्तियाँ भी दृष्टिगत होती हैं –

'दुःख सबको माँजता है
और
चाहे स्वयं सब को मुक्ति देना वह न जाने, किंतु
जिनको माँजता है
उन्हें यह सीख देता है कि सब को मुक्त रखें।'
'किंतु हम हैं द्वीप। हम धरा नहीं हैं।
स्थिर समर्पण है हमारा। हम सदा से द्वीप हैं स्रोतस्विनी के।
किंतु हम बहते नहीं हैं। क्योंकि बहना रेत होना है।
हम बहेंगे तो रहेंगे ही नहीं।
पैर उखड़ेंगे। प्लावन होगा। ढहेंगे। सहेंगे बह जाएँगे।' (नदी के द्वीप)

स्मरणीय है कि अज्ञेय शब्द शिल्पी के साथ साथ रंगों और सौंदर्य के कवि भी हैं। उनकी कविताओं में विविध रंग छटाओं का समावेश है –

'भोर का बावरा अहेरी
पहले बिछाता है आलोक की
लाल कनियाँ' (बावरा अहेरी)
'बिछली घास हो तुम
या शरद के साँझ के सूने गगन की पीठिका पर
दोलती कलगी अकेली
बाजरे की'
'साँझ हुई, सब ओर निशा ने फैलाया निज चीर

नभ से अंजन बरस रहा है नहीं दीखता तीर'
'धूप
माँ की हँसी के प्रतिबिंब सी शिशु बदन पर
हुई भासित'
'लाल
अंगारों से डह - डह इस
पंचमुख गुड़हल के फूल को
बाँधते रहे नीरव -' (पंचमुख गुड़हल)

अज्ञेय ने इलियट की भाँति भाषा और संवेदना के बदलाव को ही मुख्य रूप से कवि कर्म माना है। उन्होंने नए उपमानों, बिंबों, प्रतीकों और भाषा के प्रयोग को अभिव्यक्ति के माध्यमों के रूप में ही स्वीकार किया है। उनका मत है कि -

'ये उपमान मैले हो गए हैं
देवता इन प्रतीकों से कर गए कूच
कभी बासन् अधिक घिसने् से
मुलम्मा छूट जाता है।'

इसके अतिरिक्त उनकी काव्यभाषा में ध्वन्यात्मकता का प्रयोग भी दृष्ट्व्य है। वे अर्थ की सघनता बढ़ाने के लिए ध्वनियों का सटीक प्रयोग करते हैं। जैसे -

'चट - चट - चट कर सहसा तड़क गए हिमखंड
जमे सरसी के तल पर
लुढ़क - पुढ़क कर स्थिर...।'
'झींगुरों की लोरिया
सुला गई थी गाँव को
झोंपड़े हिंडौल - सी झुला रही है
धीमे धीमे
उजली न्यासी धूम डोरियाँ'
'चातक तापस तरु पर बैठ।
स्वाति बूँद में ध्यान रमाए,
स्वप्न तृप्ति का देखा करता
'पी! पी! पी!' की टेर लगाए' (आज थका हिय हारिल मेरा)

अज्ञेय कविता में अर्थ की सघनता के लिए शब्दों को और कभी कभी पंक्तियों को भी अलग अलग करके रखते हैं। उनकी प्रसिद्ध कविता 'जीवन मर्म' का उदाहरण देखें –

'झ
र
ना
झरता पत्ता
हरी डाल से
अटक गया।'

अज्ञेय का कव्य सत्य उनकी भाषा की बनावट और बुनावट पर चलता है। वे भाषा को परंपरा, संस्कृति और यथार्थ को पहचानने का माध्यम स्वीकार करते हैं। उनकी कविता का क्षितिज अत्यंत व्याप्क है। उनकी प्रसिद्ध उक्ति है कि 'काव्य सबसे पहले शब्द है। और सबसे अंत में भी यही बात बच जाती है कि काव्य शब्द है। सारे कवि-कर्म इसी परिभाषा से निःसृत होते हैं। शब्द का ज्ञान – ज्ञान के अर्थवत्ता की सही पकड़ – ही कृतिकार को कृति बनाती है। ध्वनि, लय, छंद आदि के सभी प्रश्न इसी में से निकलते और इसी में विलय होते हैं।' (अज्ञेय, तार सप्तक, पुनश्च, पृ.301)। अज्ञेय के पास शब्द और अर्थवत्ता की सही पकड़ है। जिस प्रकार चित्रकार सीधी – तिरछी लकीरों के माध्यम से चित्र बनाता है उसी प्रकार वे थोड़े से शब्दों और ध्वनियों से भी वांछित बिंब गढ़ लेते हैं, भाव चित्र बना लेते हैं –

'मैं ने देखा
एक बूँद सहसा
उछली सागर की झाग से –
रंगी गई क्षण – भर
ढलते सूरज की आग से।
– मुझको दीख गया –
हर आलोक – छुआ अपनापन
हे उन्मोचन
नश्वरता के दाग से।' (मैं ने देखा, एक बूँद)

'जो पुल बनाएँगे
वे अनिवार्यतः

पीछे रह जाएँगे
सेनाएँ हो जाएँगी पार
मारे जाएँगे रावण
जयी होंगे राम
जो निर्माता रहे
इतिहास में
बंदर कहलाएँगे।'

अज्ञेय शब्दों के सफल चितेरे हैं। मितकथन उनका अपना भी स्वभाव है और उनकी काव्य भाषा का भी। जैसा कि रामस्वरूप चतुर्वेदी ने कहा है, 'अज्ञेय की कविता की भाषा सहज, लोक प्रचलित तथा परंपरागत शिल्प प्रविधि से विहीन है। और भाषा के इस क्रांतिकारी प्रयोग से उन्होंने कविता को एक नई अर्थवत्ता प्रदान की है।' (रामस्वरूप चतुर्वेदी, 'काव्य भाषा का स्वरूप, काव्य भाषा पर तीन निबंध, पृ.85)।

कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि अज्ञेय ऐसे भाषा चिंतक और भाषा सृजक के कवि हैं जिन्होंने इस स्थिति की ओर संकेत किया है कि अच्छी भाषा लिखना अपने आप में बहुत बड़ी उपलब्धि है और कविता की प्रमुख विशेषता उसकी भाषा प्रयोग विधि है। इसके लिए वे भाषा के पार भी जाने को तत्पर दिखाई पड़ते हैं –

'मैं सभी ओर से खुला हूँ
वन – सा, वन – सा अपने में बंद हूँ
शब्द में मेरी समाई नहीं होगी
मैं सन्नाटे का छंद हूँ।' (छंद)

अंततः पंडित विद्यानिवास मिश्र के शब्द में 'अज्ञेय की कविता मुझे इसलिए प्रिय है कि वह जहाँ वक्तृता के प्रभाव से या सफाई के आग्रह से मुक्त हैं, शुद्ध कविता है। युग उसमें है, पर व्यक्ति के माध्यम से, देश उसमें है, पर किसी आलोकित आकाश के माध्यम से। दर्प उसमें है, ध्वंस या निर्माण का नहीं, अपनी किरण के दुलार का। बिंबों का वैचित्र्य भी ऐसा है, जो अपरिचित न होते हुए भी नए परिचय का रस देता है, वही दीप, वही मुकुर, वही कोकनद, वही सागर, वही लहर, वही नैवेद्य, वही आहुति अज्ञेय की कविता में नया प्राण पा जाते हैं।

11

धर्मवीर भारती

धर्मवीर भारती आधुनिक हिन्दी साहित्य के प्रमुख लेखक, कवि, नाटककार और सामाजिक विचारक थे। वे एक समय की प्रख्यात साप्ताहिक पत्रिका धर्मयुग के प्रधान संपादक भी थे। डॉ धर्मवीर भारती को 1972 में पद्मश्री से सम्मानित किया गया। उनका उपन्यास गुनाहों का देवता सदाबहार रचना मानी जाती है। सूरज का सातवां घोड़ा को कहानी कहने का अनुपम प्रयोग माना जाता है, जिस पर याम बेनेगल ने इसी नाम की फिल्म बनायी, अंधा युग उनका प्रसिद्ध नाटक है।। इब्राहीम अलकाजी, राम गोपाल बजाज, अरविन्द गौड़, रतन थियम, एम के रैना, मोहन महर्षि और कई अन्य भारतीय रंगमंच निर्देशकों ने इसका मंचन किया है।

जीवन परिचय

धर्मवीर भारती का जन्म 25 दिसंबर 1926 को इलाहाबाद के अतर सुइया मुहल्ले में हुआ। उनके पिता का नाम श्री चिरंजीव लाल वर्मा और माँ का श्रीमती चंदादेवी था। स्कूली शिक्षा डी. ए वी हाई स्कूल में हुई और उच्च शिक्षा प्रयाग विश्वविद्यालय में। प्रथम श्रेणी में एम ए करने के बाद डॉ. धीरेन्द्र वर्मा के निर्देशन में सिद्ध साहित्य पर शोध-प्रबंध लिखकर उन्होंने पी-एच0डी0 प्राप्त की।

घर और स्कूल से प्राप्त आर्यसमाजी संस्कार, इलाहाबाद और विश्वविद्यालय का साहित्यिक वातावरण, देश भर में होने वाली राजनैतिक हलचलें, बाल्यावस्था

में ही पिता की मृत्यु और उससे उत्पन्न आर्थिक संकट इन सबने उन्हें अतिसंवेदनशील, तर्कशील बना दिया। उन्हें जीवन में दो ही शौक थे–अध्ययन और यात्रा। भारती के साहित्य में उनके विशद अध्ययन और यात्रा-अनुभवों का प्रभाव स्पष्ट देखा जा सकता है–

जानने की प्रक्रिया में होने और जीने की प्रक्रिया में जानने वाला मिजाज जिन लोगों का है उनमें मैं अपने को पाता हूँ। (ठेले पर हिमालय)

उन्हें आर्यसमाज की चिंतन और तर्कशैली भी प्रभावित करती है और रामायण, महाभारत और श्रीमद्भागवत। प्रसाद और शरत्चन्द्र का साहित्य उन्हें विशेष प्रिय था। आर्थिक विकास के लिए मार्क्स के सिद्धांत उनके आदर्श थे परंतु मार्क्सवादियों की अधीरता और मताग्रहता उन्हें अप्रिय थे। 'सिद्ध साहित्य' उनके शोध' का विषय था, उनके सटजिया सिद्धांत से वे विशेष रूप से प्रभावित थे। पश्चिमी साहित्यकारों में शीले और आस्करवाइल्ड उन्हें विशेष प्रिय थे। भारती को फूलों का बेहद शौक था। उनके साहित्य में भी फूलों से संबंधित बिंब प्रचुरमात्रा में मिलते हैं।

आलोचकों में भारती जी को प्रेम और रोमांस का रचनाकार माना है। उनकी कविताओं, कहानियों और उपन्यासों में प्रेम और रोमांस का यह तत्त्व स्पष्ट रूप से मौजूद है। परंतु उसके साथ-साथ इतिहास और समकालीन स्थितियों पर भी उनकी पैनी दृष्टि रही है जिसके संकेत उनकी कविताओं, कहानियों, उपन्यासों, नाटकों, आलोचना तथा संपादकीयों में स्पष्ट देखे जा सकते हैं। उनकी कहानियों-उपन्यासों में मध्यवर्गीय जीवन के यथार्थ के चित्र हैं 'अंधा युग' में स्वातंत्रायोत्तर भारत में आई मूल्यहीनता के प्रति चिंता है। उनका बल पूर्व और पश्चिम के मूल्यों-जीवन-शैली और मानसिकता के संतुलन पर है, वे न तो किसी एक का अंधा विरोध करते हैं न अंधा समर्थन, परंतु क्या स्वीकार करना और क्या त्यागना है इसके लिए व्यक्ति और समाज की प्रगति को ही आधार बनाना होगा-

पश्चिम का अंधानुकरण करने की कोई जरूरत नहीं है, पर पश्चिम के विरोध के नाम पर मध्यकाल में तिरस्कृत मूल्यों को भी अपनाने की जरूरत नहीं है।

उनकी दृष्टि में वर्तमान को सुधारने और भविष्य को सुखमय बनाने के लिए आम जनता के दु:ख दर्द को समझने और उसे दूर करने की आवश्यकता है। दु:ख तो उन्हें इस बात का है कि आज 'जनतंत्र' में 'तंत्र' शक्तिशाली लोगों

के हाथों में चला गया है और 'जन' की ओर किसी का ध्यान ही नहीं है। अपनी रचनाओं के माध्यम से इसी 'जन' की आशाओं, आकांक्षाओं, विवशताओं, कष्टों को अभिव्यक्ति देने का प्रयास उन्होंने किया है।

कार्यक्षेत्र–अध्यापन। 1948 में 'संगम' सम्पादक श्री इलाचंद्र जोशी में सहकारी संपादक नियुक्त हुए। दो वर्ष वहाँ काम करने के बाद हिन्दुस्तानी अकादमी में अध्यापक नियुक्त हुए। सन् 1960 तक कार्य किया। प्रयाग विश्वविद्यालय में अध्यापन के दौरान 'हिंदी साहित्य कोश' के सम्पादन में सहयोग दिया। निकर्षे' पत्रिका निकाली तथा 'आलोचना' का सम्पादन भी किया। उसके बाद 'धर्मयुग' में प्रधान सम्पादक पद पर बम्बई आ गये।

1997 में डॉ. भारती ने अवकाश ग्रहण किया। 1999 में युवा कहानीकार उदय प्रकाश के निर्देशन में साहित्य अकादमी दिल्ली के लिए डॉ. भारती पर एक वृत्त चित्र का निर्माण भी हुआ है।

अलंकरण तथा पुरस्कार

1972 में पद्मश्री से अलंकृत डा धर्मवीर भारती को अपने जीवन काल में अनेक पुरस्कार प्राप्त हुए जिसमें से प्रमुख हैं–

1984 हल्दी घाटी श्रेष्ठ पत्रकारिता पुरस्कार
महाराणा मेवाड़ फाउंडेशन 1988
सर्वश्रेष्ठ नाटककार पुरस्कार संगीत नाटक अकादमी दिल्ली 1989
भारत भारती पुरस्कार उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान 1990
महाराष्ट्र गौरव, महाराष्ट्र सरकार 1994
व्यास सम्मान के के बिड़ला फाउंडेशन

प्रमुख कृतियां

कहानी संग्रह–मुर्दो का गाँव, स्वर्ग और पृथ्वी, चाँद और टूटे हुए लोग, बंद गली का आखिरी मकान, साँस की कलम से, समस्त कहानियाँ एक साथ

काव्य रचनाएं–ठंडा लोहा, सात गीत वर्ष, कनुप्रिया, सपना अभी भी, आद्यन्त

उपन्यास– गुनाहों का देवता, सूरज का सातवां घोड़ा, ग्यारह सपनों का देश, प्रारंभ व समापन

निबंध–ठेले पर हिमालय, पश्यंती एकांकी व नाटक–नदी प्यासी थी, नीली झील, आवाज का नीलाम आदि

पद्य नाटक–अंधा युग

आलोचना–प्रगतिवाद–एक समीक्षा, मानव मूल्य और साहित्य

भाषा123

परिमार्जित खड़ीबोली, मुहावरों, लोकोक्तियों, देशज तथा विदेशी भाषाओं के शब्दों का प्रयोग।

शैली

भावात्मक, वर्णनात्मक, शब्द चित्रात्मक आलोचनात्मक हास्य व्यंग्यात्मक।

12

शमशेर बहादुर सिंह

शमशेर बहादुर सिंह आधुनिक हिंदी कविता की प्रगतिशील त्रयी के एक स्तंभ हैं। हिंदी कविता में अनूठे माँसल एंद्री, बिंबों के रचयिता शमशेर आजीवन प्रगतिवादी विचारधारा से जुड़े रहे। तार सप्तक से शुरुआत कर, चुका भी नहीं हूँ, मैं के लिए साहित्य अकादमी सम्मान पाने वाले शमशेर ने कविता के अलावा डायरी लिखी और हिंदी उर्दू शब्दकोश का संपादन भी किया।

जीवन वृत

शमशेर का जन्म 13 जनवरी 1911 को देहरादून में हुआ। उनके पिता का नाम तारीफ सिंह और माँ का परम देवी था। उनके भाई तेज बहादुर उनसे दो साल छोटे थे। उनकी मां दोनों भाइयों को 'राम-लक्ष्मण की जोड़ी' कहती थीं। शमशेर 8-9 साल के थे जब उनकी माँ की मृत्यु हो गई। लेकिन दोनों भाइयों की यह जोड़ी शमशेर की मृत्यु तक बनी रही। आधुनिक हिंदी कविता के प्रगतिशील कवि हैं। ये हिंदी तथा उर्दू के विद्वान हैं। प्रयोगवाद और नई कविता के कवियों की प्रथम पंक्ति में इनका स्थान है। इनकी शैली अंग्रेजी कवि एजरा पाउण्ड से प्रभावित है। शमशेर बहादुर सिंह 'दूसरा सप्तक' (1951) के कवि हैं। शमशेर बहादुर सिंह ने कविताओं के समान ही चित्रों में भी प्रयोग किये हैं। आधुनिक कविता में 'अज्ञेय' और शमशेर का कृतित्त्व दो भिन्न दिशाओं का परिचायक है- 'अज्ञेय' की कविता में वस्तु और रूपाकार दोनों के बीच संतुलन

स्थापित रखने की प्रवृत्ति परिलक्षित होती है, शमशेर में शिल्प-कौशल के प्रति अतिरिक्त जागरूकता है। इस दृष्टि से शमशेर और 'अज्ञेय' क्रमशः दो आधुनिक अंग्रेज कवियों एजरा पाउण्ड और इलियट के अधिक निकट हैं। आधुनिक अंग्रेजी-काव्य में शिल्प को प्राधान्य देने का श्रेय एजरा पाउण्ड को प्राप्त है। वस्तु की अपेक्षा रूपविधान के प्रति उनमें अधिक सजगता दृष्टिगोचर होती है। आधुनिक अंग्रेजी-काव्य में काव्य-शैली के नये प्रयोग एजरा पाउण्ड से प्रारम्भ होते हैं। शमशेर बहादुर सिंह ने अपने वक्तव्य में एजरा पाउण्ड के प्रभाव को मुक्तकण्ठ से स्वीकार किया है- टेकनीक में एजरा पाउण्ड शायद मेरा सबसे बड़ा आदर्श बन गया।

शिक्षा

आरंभिक शिक्षा देहरादून में हुई और हाईस्कूल-इंटर की परीक्षा गोंडा से दी। बी.ए. इलाहाबाद से किया, किन्हीं कारणों से एम.ए. फाइनल न कर सके। 1935-36 में उकील बंधुओं से पेंटिंग कला सीखी। 'रूपाभ', 'कहानी', 'नया साहित्य', 'माया', 'नया पथ', 'मनोहर कहानियां' आदि में संपादन सहयोग। उर्दू-हिन्दी कोश प्रोजेक्ट में संपादक रहे और विक्रम विश्वविद्यालय के 'प्रेमचंद सृजनपीठ' के अध्यक्ष रहे। दूसरा तार सप्तक के कवि हैं।

विवाह

सन् 1929 में 18 वर्ष की अवस्था में शमशेर बहादुर सिंह का विवाह धर्मवती के साथ हुआ, लेकिन छह वर्ष के बाद ही 1935 में उनकी पत्नी धर्मवती की मृत्यु टीबी के कारण हो गई। 24 वर्ष के शमशेर को मिला जीवन का यह अभाव कविता में विभाव बनकर हमेशा मौजूद रहा। काल ने जिसे छीन लिया था, उसे अपनी कविता में सजीव रखकर वे काल से होड़ लेते रहे। युवाकाल में शमशेर बहादुर सिंह वामपंथी विचारधारा और प्रगतिशील साहित्य से प्रभावित हुए थे। उनका जीवन निम्न मध्यवर्गीय व्यक्ति का था।

काव्य शैली

शमशेर बहादुर सिंह में अपने बिम्बों, उपमानों और संगीतध्वनियों द्वारा चमत्कार और वैचित्र्यपूर्ण आद्यात् उत्पन्न करने की चेष्टा अवश्य उपलब्ध होती है, पर किसी केन्द्रगामी विचार-तत्त्व का उनमें प्रायः अभाव-सा है। अभिव्यक्ति

की वक्रता द्वारा वर्ण-विग्रह और वर्ण-संधि के आधार पर नयी शब्द-योजना के प्रयोग से चामत्कारिक आघात देने की प्रवृत्ति इनमें किसी ठोस विचार तत्त्व की अपेक्षा अधिक महत्त्व रखती है। शमशेर बहादुर सिंह में मुक्त साहचर्य और असम्बद्धताजन्य दुरूहता के तत्त्व साफ नजर आते हैं। उनकी अभिव्यक्ति में अधूरापन परिलक्षित होता है। शमशेर की कविता में उलझनभरी संवेदनशीलता अधिक है। उनमें शब्द-मोह, शब्द-खिलवाड़ के प्रति अधिक जागरुकता है और शब्द-योजना के माध्यम से संगीत-ध्वनि उत्पन्न करने की प्रवृत्ति देखी जा सकती हैं।

आधुनिक काव्य-बोध

शमशेर की कविताएँ आधुनिक काव्य-बोध के अधिक निकट हैं, जहाँ पाठक तथा श्रोता के सहयोग की स्थिति को स्वीकार किया जाता है। उनका बिम्बविधान एकदम जकड़ा हुआ 'रेडीमेड' नहीं है। वह 'सामाजिक' के आस्वादन को पूरी छूट देता है। इस दृष्टि से उनमें अमूर्तन की प्रवृत्ति अपने काफी शुद्ध रूप में दिखाई देती है। उर्दू की गजल से प्रभावित होने पर भी उन्होंने काव्य-शिल्प के नवीनतम रूपों को अपनाया है। प्रयोगवाद और नयी कविता के पुरस्कर्ताओं में वे अग्रणी हैं। उनकी रचनाप्रकृति हिन्दी में अप्रतिम है और अनेक सम्भावनाओं से युक्त है। हिन्दी के नये कवियों में उनका नाम प्रथम पांक्तोय है। 'अज्ञेय' के साथ शमशेर ने हिन्दी-कविताओं में रचना-पद्धति की नयी दिशाओं को उद्घाटित किया है और छायावादोत्तर काव्य को एक गति प्रदान की है।

विचारधारा

चितेरे और आजीवन प्रगतिवादी विचारधारा के समर्थक रहे। उन्होंने स्वाधीनता और क्रांति को अपनी निजी चीज की तरह अपनाया। इंद्रिय सौंदर्य के सबसे संवेदनापूर्ण चित्र देकर भी वे अज्ञेय की तरह सौंदर्यवादी नहीं हैं। उनमें एक ऐसा ठोसपन है, जो उनकी विनम्रता को ढुलमुल नहीं बनने देता। साथ ही किसी एक चौखटे में बंधने भी नहीं देता। सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' उनके प्रिय कवि थे। उन्हें याद करते हुए शमशेर बहादुर सिंह ने लिखा था-

'भूल कर जब राह, जब-जब राह.. भटका मैं, तुम्हीं झलके हे महाकवि,ध सघन तम की आंख बन मेरे लिए।'

शमशेर के राग-विराग गहरे और स्थायी थे। अवसरवादी ढंग से विचारों को अपनाना, छोड़ना उनका काम नहीं था। अपने मित्र और कवि केदारनाथ अग्रवाल की तरह वे एक तरफ 'यौवन की उमड़ती यमुनाएं' अनुभव कर सकते थे, वहीं दूसरी ओर 'लहू भरे ग्वालियर के बाजार में जुलूस' भी देख सकते थे। उनके लिए निजता और सामाजिकता में अलगाव और विरोध नहीं था, बल्कि दोनों एक ही अस्तित्त्व के दो छोर थे। शमशेर बहादुर सिंह उन कवियों में से थे, जिनके लिए मार्क्सवाद की क्रांतिकारी आस्था और भारत की सुदीर्घ सांस्कृतिक परंपरा में विरोध नहीं था।

रचनाएँ

काव्य-कृतियां

'कुछ कविताएं' (1956)
'कुछ और कविताएं' (1961)
'शमशेर बहादुर सिंह की कविताएं' (1972)
'इतने पास अपने' (1980)
'उदिता–अभिव्यक्ति का संघर्ष' (1980)
'चुका भी हूं नहीं मैं' (1981)
'बात बोलेगी' (1981)
'काल तुझसे होड़ है मेरी' (1988)
'शमशेर की गजलें'।
गद्य रचना
'दोआब' निबंध- संग्रह (1948)
'प्लाट का मोर्चा' कहानियां व स्केच (1952)
'शमशेर की डायरी।'

अनुवाद

सरशार के उर्दू उपन्यास 'कामिनी'
'हुशू'
'पी कहां।'
एजाज हुसैन द्वारा लिखित उर्दू साहित्य का इतिहास।
'षडयंत्र' (सोवियत संघ-विरोधी गतिविधियों का इतिहास)

'वान्दावासिलवास्का' (रूसी) के उपन्यास 'पृथ्वी और आकाश'
'आश्चर्य लोक में एलिस'।
सम्मान और पुरस्कार

शमशेर बहादुर सिंह को देर से ही सही, बड़े-बड़े पुरस्कार भी मिले- साहित्य अकादमी (1977), मैथिली शरण गुप्त पुरस्कार (1987), कबीर सम्मान (1989) आदि।

निधन

शमशेर बहादुर सिंह ने 12 मई, 1993 को दुनिया से अलविदा कहा। डॉ. रंजना अरगड़े के अनुसार 'जब उन्हें हार्ट अटैक आया तो अस्पताल में लगभग 72 घंटे से भी कम रहे। वह बहुत पीड़ा का समय तो नहीं था। लेकिन उन्हें शायद अंदाजा हो गया था कि अब जाने का समय आ गया है। मैं उनसे पूछ रही थी कि वे क्या सुनना चाहेंगे गालिब या कुछ और लेकिन वे इनकार में सिर हिलाते रहे।' वे याद करती हैं, 'आखरि में शमशेर ने गायत्री मंत्र सुनने की इच्छा जताई। उज्जैन में जब वे थे तो संस्कृत की छूटी हुई कड़ी वहीं हाथ आ गई थी। मैं गायत्री मंत्र बोल रही थी और वे साथ में बोलते जा रहे थे। मंत्र बोलते -बोलते जब वे चुप हो गए तो मैं जान गई थी कि अब वे नहीं हैं।'

उनकी मृत्यु 12 मई 1993 को अहमदाबाद में हुई। अहमदाबाद उनपर शोधकर्ती

कार्यक्षेत्र

'रूपाभ', इलाहाबाद में कार्यालय सहायक (1939), 'कहानी' में त्रिलोचन के साथ (1940), 'नया साहित्य', बंबई में कम्यून में रहते हुए (1946, माया में सहायक संपादक (1948-54), नया पथ और मनोहर कहानियाँ में संपादन सहयोग। दिल्ली विश्वविद्यालय में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की एक महत्वपूर्ण परियोजना 'उर्दू हिन्दी कोश' का संपादन (1965-77), प्रेमचंद सृजनपीठ, विक्रम विश्वविद्यालय के अध्यक्ष (1981-85)

महत्वपूर्ण कृतियां

कविता-संग्रह– कुछ कविताएं (1956), कुछ और कविताएं (1961), चुका भी नहीं हूं मैं (1975), इतने पास अपने (1980), उदिता - अभिव्यक्ति का संघर्ष (1980), बात बोलेगी (1981), काल तुझसे होड़ है मेरी (1988)।

निबन्ध-संग्रह– दोआब

कहानी-संग्रह'– प्लाट का मोर्चा

शमशेर का समग्र गद्य कुछ गद्य रचनायें तथा कुछ और गद्य रचनायें नामक पुस्तकों में संग्रहित हैं ! उनकी प्रमुख कविताओं में 'अमन का राग'(प्रकाशित1952),'एक पीली शाम'(1953),'एक नीला दरिया बरस रहा' प्रमुख है।

साहित्यिक वैशिष्ट्य

शमशेर सौंदर्य के अनूठे चित्रों के स्रष्टा के रूप में हिंदी में सर्वमान्य हैं। वे स्वयं पर इलियट-एजरा पाउंड-उर्दू दरबारी कविता का रुग्ण प्रभाव होना स्वीकार करते हैं। लेकिन उनका स्वस्थ सौंदर्यबोध इस प्रभाव से ग्रस्त नहीं है।

1. मोटी धुली लॉन की दूब,
   साफ मखमल-सी कालीन।
   ठंडी धुली सुनहली धूप।
2. बादलों के मौन गेरू-पंख, संन्यासी, खुले है श्याम पथ पर, स्थिर हुए-से, चल।

'टूटी हुई, बिखरी हुई' प्रतिनिधि कविताएँ नहीं मानी जातीं। उनमें शमशेर ने लिखा है-

'दोपहर बाद की धूप-छांह
में खड़ी इंतजार की ठेलेगाड़ियांध जैसे मेरी पसलियां..
खाली बोरे सूजों से रफू किये जा रहे हैं।
जो मेरी आंखों का सूनापन है।'

शमशेर के लिए मार्क्सवाद की क्रांतिकारी आस्था और भारत की सुदीर्घ सांस्कृतिक परंपरा में विरोध नहीं था। उषा शीर्षक कविता में उन्होंने भोर के नभ को नीले शंख की तरह देखा है।

'प्रात नभ था बहुत नीला शंख जैसे'-

वैदिक कवियों की तरह वे प्रकृति की लीला को पूरी तन्मयता से अपनाते हैं-

1. जागरण की चेतना से मैं नहा उट्ठा।
   सूर्य मेरी पुतलियों में स्नान करता।

2. सूर्य मेरी पुतलियों में स्नान करता
केश-तन में झिलमिला कर डूब जाता..

वे सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन में सांप्रदायिकता के विरोधी और समाहारता के समर्थक थे। उन्होंने स्वयं को 'हिंदी और उर्दू का दोआब' कहा है। रूढिवाद-जातिवाद का उपहास करते हुए वे कहते हैं-

'क्या गुरुजी मनु ऽ जी को ले आयेंगे?
हो गये जिनको लाखों जनम गुम हुए।'

पुरस्कार व सम्मान

1. 1977- साहित्य अकादमी पुरस्कार, 'चुका भी हूँ नहीं मैं' के लिये
2. मैथिली शरण गुप्त पुरस्कार
3. 1989- कबीर सम्मान

प्रतिनिधि पंक्तियाँ

हाँ, तुम मुझसे प्रेम करो जैसे मछलियाँ लहरों से करती हैं
...जिनमें वह फँसने् नहीं आतीं,
जैसे हवाएँ मेरे सीने से करती हैं
जिसको वह गहराई तक दबा नहीं पातीं,
तुम मुझसे प्रेम करो जैसे मैं तुमसे करता हूँ।

शमशेर बहादुर सिंह की काव्य भाषा में बिम्ब विधान

स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कविता में जैसे विषय बदले, वस्तु बदली और कवि की जीवन-दृष्टि बदली वैसे ही शिल्प के क्षेत्र में रूप-विधान के नये आयाम भी विकसित हुए। कविता की समीक्षा के मानदण्डों में एक-बारगी युगान्तर आया और नये ढंग पर कविता की इमारत खड़ी की गई। कवि की अनुभूतियाँ नये अप्रस्तुतों और प्रतीकों को खोजते-खोजते बिम्ब के नये धरातलों को उद्घाटित करने में समर्थ हुई। कविता की जीवन्तता में प्राणशक्ति के रूप में बिम्ब ने अपना स्थान और महत्व पाया।

प्रतीक और अप्रस्तुत तो प्रारम्भ से ही कविता की समीक्षा के प्रतिमानों के रूप में स्वीकृत थे, अब बिम्ब भी कविता के मूल्यांकन की कसौटी के रूप में स्वीकारा जाने लगा। यों तो बिम्बों के निर्माण और चयन

की प्रक्रिया संस्कृत साहित्य में ही प्रचलित थी, किन्तु तत्कालीन कवियों और समीक्षकों ने, बल्कि आजादी से पहले तक हिन्दी के समीक्षकों ने भी बिम्ब को काव्य का प्राणतत्त्व नहीं माना था। आजादी के बाद कई नये संदर्भ, कई नये शैल्पिक प्रतिमान सामने आये। इसका कारण पाश्चात्य साहित्य का प्रभाव तो था ही, विदेशों में चल रहा बिम्बवादी आन्दोलन भी था। छायावादियों ने भी अप्रत्यक्षत: शिल्प के अंग के रूप में 'चित्रत्व' को स्वीकार कर लिया था। सुमित्रनन्दन पन्त ने जब काव्य-भाषा के विवेचन के दौरान चित्रभाषा के प्रयोग की बात कही थी तो प्रकारानतर से बिम्ब को ही काव्य-शिल्प के अंग और आलोचना के प्रतिमान के रूप में स्वीकार किया था। आचार्य शुक्ल भी बिम्ब को स्वीकृति दे चुके थे। उन्होंने 'चिन्तामणि' के एक निबन्ध में लिखा था, "काव्य का काम है कल्पना में बिम्ब या मूर्तभावना उपस्थित करना"–स्पष्ट शब्दों में काव्य कल्पना-चित्र नहीं है, वरन् अनुभूतियों का मूर्तिकरण है।

बिम्ब काव्य-भाषा की तीसरी आँख है, जो मात्र गोचर ही नहीं, किसी अगोचर तत्वेतसा स्मरति नूनमबोधपूर्व (कालिदास-पहले से जो अवबोधन हो उसकी स्मृति)-रूप से, एक ओर कारयित्री और दूसरी ओर भावयित्री भाषा के लिए उपलब्ध करती है।

बिम्ब शब्द का अर्थ छाया, प्रतिच्छाया, अनुकृति या शब्दों के द्वारा भावांकन है। बिम्ब अंग्रेजी के इमेज शब्द का हिन्दी रूपान्तर है। सी0डी0 लेविस के अनुसार-

"The poetic image is more or less a sensuous picture in words] to some degree metaphorical, with an undernote and some human emotion, in its conteÛt but also charged with releasing into the reader a special poetic emotion or passion-"

अर्थात् काव्यात्मक बिम्ब एक संवेदनात्मक चित्र है, जो एक सीमा तक अलंकृत-रूपतामक भावात्मक और आवेगात्मक होता है। लीविस ने बिम्ब को भावगर्भित चित्र ही माना है।

डॉ. नगेन्द्र के अनुसार, "बिम्ब किसी अमूर्त विचार अथवा भावना की पुनर्निर्मिति।

एजरा पाउण्ड के अनुसार, "बिम्ब वह है, जो किसी बौद्धिक तथा भावात्मक संश्लेष को समय के किसी एक बिन्दु पर संभव करता है।"

हिन्दी की नयी कविता-धारा के कवि पश्चिम के काव्य और काव्यान्दोलनों से परिचित थे। 'तार सप्तक' में प्रभाकर माचवे ने अपनी कविता को 'इम्प्रेशनिस्ट' अथवा बिम्बवादी घोषित किया। फिर भी तीसरी सप्तक के कवि केदारनाथ सिंह से पहले बिम्ब-विधान को किसी ने अपने वक्तव्य में प्रमुखता नहीं दी थी। केदारनाथ सिंह ने घोषित किया कि "कविता में मैं सबसे अधिक ध्यान देता हूँ बिम्ब-विधान पर।"

एक आधुनिक कवि की श्रेष्ठता की परीक्षा की कसौटी जहाँ अज्ञेय 'शब्दों का आविष्कार' को मानते हैं, वहीं केदारनाथ सिंह 'बिम्बों की आविष्कृति' को। अपनी पुस्तक 'आधुनिक हिन्दी में बिम्ब विधान का विकास' में उन्होंने बिम्ब के प्रतिमान पर छायावाद से लेकर प्रयोगवाद तक के साहित्य की परीक्षा की है। शमशेर की कृतियों में बिम्ब अधिक सजीव और ऐन्द्रिय हैं। उनके समकालीन रचनाकार बच्चन, अज्ञेय, अंचल, दिनकर, नरेन्द्र शर्मा की कृतियाँ अपनी बिम्बात्मक गुणात्मकता के कारण ही मूल्यवान हैं। शमशेर के काव्य में बिम्ब अधिक संश्लिष्ट और गहराई लिए हुए है। भले ही उसका क्षेत्र सीमित हो किन्तु इस बात से कतई इंकार नहीं किया जा सकता कि वे अनुभूति और विचार से संबद्ध होने के कारण अपना औचित्य लिए हुए हैं।

शमशेर के बिम्ब रंग-ध्वनि-गंधपूर्ण हैं। उनके काव्य में नारी की मांसलता और प्रकृति की सुन्दरता के साथ कहीं-कहीं उनके बिम्ब यथार्थपरक स्वच्छन्द दृष्टि के सूचक हैं। शमशेर की कविता में लौकिक बिम्बों के साथ-साथ अलौकिक से बिम्बों की सृष्टि भी हुई है। शमशेर के काव्य में वस्तु या प्राकृतिक उपादानों का मूर्तकरण-मानवीकरण हुआ है, जो एक प्रकार की बिम्बात्मकता ही है। शमशेर कविता में जहाँ कल्पना है, वहाँ बिम्ब अधिक प्रभावशाली हैं। "कल्पना वह शक्ति है, जो सर्वप्रथम कवि का वर्ण्य-विषय या वस्तु से सीधा साक्षात्कार कराती है।"

शमशेर की काव्य-भाषा प्रधानत: बिम्बात्मक है। सतर्कता के कारण वे बिम्बों का चयन बड़ी कुशलतापूर्वक कर सकते हैं। उनकी कुछ कविताएँ और कुछ और कविताएँ कृतियों के अलावा 'काल तुमसे होड़ है मेरी', 'बात बोलेगी' में भाषिक संवेदना के साथ बिम्बों-प्रतीकों का कौशल बहुत प्रभावशाली है। इस वैशिष्ट्य के बावजूद अपनी बनावट में शमशेर की कविता बिम्बों-प्रतीकों, रूपकों-उपमानों के सूक्ष्म संवेदन और चिन्तन-मनन की गहराई में डूब कर बखूबी समझी जा सकती है। उनकी काव्यात्मक संवेदना और रचनात्मक चेतना

जिन वर्ण्य-विषयों को छूती है वे बिम्ब बनते हैं। उनके बिम्ब-विधान को अग्रांकित कोटियों में रख सकते हैं–

प्रकृति-बिम्ब
गंध बिम्ब
आस्वाद्य बिम्ब
नाद बिम्ब
दृश्य बिम्ब
स्पर्श बिम्ब
आद्य बिम्ब
स्मृति बिम्ब
भाव बिम्ब
अप्रस्तुत बिम्ब
प्रकृति बिम्ब

शमशेर की कविता में प्राय: प्रकृति बिम्बों के साथ अन्य छोटे-छोटे बिम्बों का सुन्दर समन्वय हुआ है। उनके बिम्ब जन-जीवन के साधारण व्यापार को भी कहीं असाधारण अर्थवत्त प्रदान करते हैं। उनके प्रकृति बिम्बों में संश्लिष्ट रोमानी बिम्बों की मोहकता एवं मार्मिकता है। ये या ऐसे बिम्ब कहीं-कहीं कल्पनाजनित होकर भी अंतत: यथार्थ से रूबरू कराते हैं, कहीं यथार्थपरक होकर भी कल्पना से लगते हैं। उनमें सघनता संश्लिष्टता है-वे वैज्ञानिक और आधुनिक जीवन से सम्बद्ध हैं। 'एक नीला दरिया बरस रहा', 'सारनाथ की एक शाम', 'सागर तट सौन्दर्य', 'एक पीली शाम', 'ऊषा', 'पूर्णिमा का चाँद', शाम होने को हुई, 'सुबह रात्रि', गीली मुलायम लटें', 'बसन्त आया' आदि कविताएँ ऐसी हैं। 'एक नीला आइना बेठोस', 'सूर्यास्त' और 'सागर तट' कविता पंक्तियों में प्रकृति बिम्बों का बड़ा उदात्त चित्रण है-

(i) एक नीला आइना
बेठोस सी यह चाँदनी
और अन्दर चल रहा हूँ मैं
उसी के महातल के मौन में।
मौन में इतिहास का कन किरन जीवित, एक, बस।

"शमशेर के प्रकृति चित्रण में अतियथार्थवादी झलक बार-बार मिलती है। प्रकृति जितनी उनसे बाहर है, उतनी ही भीतर है। यह चित्रण यथार्थ है तो दूसरा

अतियथार्थ। कविता में वर्णन की परम्परा और अनुभव का उन्मेष दोनों घुलते-मिलते हैं, पर शमशेर के यहाँ महत्व दूसरे का है। शायद यही कारण है कि प्रकृति चित्रण में उनका लगाव जितना जल था कि आकाश से है उतना मिट्टी से नहीं।"

(ii) पी गया हूँ दृश्य वर्षा का:
हर्ष बादल का
हृदय में भर कर हुआ हूँ। हवा सा हल्का।
धुन रही थीं सर
व्यर्थ व्याकुल मत्त लहरें

शमशेर में विराट प्रकृति आत्मीय कैसे हो उठती है, इसका अच्छा साक्ष्य उन की प्रसिद्ध कविता 'सागर तट' प्रस्तुत करती है। जल, पर्वत और वर्षा का व्यापक सन्दर्भ लेकर कवि ने उनसे एक घरेलू बिम्ब की रचना की है। प्रेम की मनोभूति पर इनकी अंतर्प्रक्रिया कल्पना को हौले से सक्रिय करती है-

(iii) चाँदनी में धुल गये हैं
बहुत से तारे बहुत कुछ
धुल गया हूँ मैं। बहुत कुछ अब।
चल रहा है, जो। शान्त सा इंगित सा
न जाने किधर.....

(iv) व्योम में फैले हुए मेहराब के विस्तार
स्तूप औ, मीनार नभ को थामने के लिए
उठते हुए।
विकटतम थे अति विकटतम
विगत के सोपान पर्वत श्रृंग

(v)
पंक्तियों में टूटती-गिरती
चाँदनी में लौटती लहरें
बिजलियों-सी कौधती लहरें
मछलियों-सी बिछल पड़ती तड़पती लहरें
बार-बार

गंध बिम्ब

घ्राण-विषयी बिम्ब गन्ध-विषयक अप्रस्तुतों के माध्यम से घ्राण-विषय अनुभूति को उद्‌बद्ध करते हैं और उसके समग्र प्रभाव को संवेदना के आधार पर मूर्तिमत्ता प्रदान करते हैं। दृश्य को प्राणवत्ता देने में गन्ध योजना सहायक सिद्ध होती है।

(i) धुआँ। धुआँ। सुलग रहा
(ii) जल रहा। धुआँ धुआँ
गवालियर के मजूर का हृदय
(iii) सुलगता हुआ पहरा
या फानूस?
(iv) सीने में सूराख हड्‌डी का।
आँखों में घास-काई की नमी।
(v) थी महक। शराब की

आस्वाद्य बिम्ब

"दृश्य को स्वाद के स्तर पर अनुभव करना तथा कराना कल्पना व्यापार का सबसे कठिन कार्य है।" शमशेर के काव्य में स्वाद संवेदना की कलात्मक अभिव्यक्ति हुई है इसे 'रासायनिक' बिम्ब भी कहते हैं। स्वाद-संवेदना के अनेक चित्र उनकी कविता में मिलते हैं-

(i)
हल्की मीठी चा सा दिन
मीठी चुस्की सी बातें
मुलायम बाहों का अपनाव।

शमशेर की कविता पढ़कर 'अब यह हम पर है, कि हम अपने सामने और चारों ओर की इस अनन्त और अपार लीला को कितना अपने अन्दर घुला सकते हैं।' 'दूब' कविता की ये पंक्तियाँ जैसे शमशेर की अपनी कविता का ही रूप प्रस्तुत करती हैं। शमशेर की समूची काव्य-प्रकृति उनके वर्ण्या, बिम्ब और लय में अभेद है। साहित्य-समीक्षा में यह बार-बार कही जाती है कि कवि की कोई पंक्ति उद्धृत करके अनिवार्यत: यह नहीं कहा जा सकता कि यह उस रचनाकार की संवेदना का प्रतिनिधित्व करती है।

(ii) आखिर क्यों मुस्कुराते हैं शराबी अधर?
(iii)नमक जैसे मैले संगमरमर का बादल
(iv) अभाव के व्यंग्य से।
जूते चबाता हुआ-सा मानो
(v) दिलों में जैसे मीठी फाँसें

रूप बिम्ब

कवि अपने भावातिरेक से प्रेरित होकर काव्य का सृजन करता है। काव्य की सफलता यही है कि वह वर्ण्य-विषय सम्बन्धी बिम्बों को पढ़ते ही आँखों के सामने चित्र से घूमने लगते हैं। रोमान्टिक कविताओं में रूप-बिम्ब की प्रधानता होती है।

(i)
नील जल में या किसी की
गौर झिलमिल देह
जैसे हिल रही हो।

ऊषा के जल में झलकता उज्ज्वल प्रतिबिम्ब जैसे राशि-राशि सौन्दर्य को अनन्त नील गहराइयों में परिव्याप्त कर रहा हो, ऊषा की सुन्दरता जादू या रहस्य की तरह फैल गई हो। विशेषता यह है कि जादू यहाँ कोई अतिप्राकृत तत्त्व नहीं है, वह पूरे तौर पर प्रकृति से उपजता है।

(ii) बादलों की इन्द्रधनुषी हँसियाँ?
(iii)
काला काला
आँख का तिल है
जोत का द्वार!
(iv) अपनी अजीब-सी खनक और चमक लिए
गोरी गुलाबी धूप

स्थिर बिम्ब

काव्य में स्थिर बिम्ब वस्तु के आकार, रूप व रंग को प्रस्तुत कर पाठक की राग चेतना को उद्‌बुद्ध कर, उसके मन को वस्तु की कल्पना के लिए प्रेरित करता है। पाठक के आँखों के सामने वस्तु रूपायित होती है। स्थिर बिम्ब में

वस्तु, वातावरण, आकृति और अपनी रंग रेखाओं के साथ पाठक के सामने मूर्त रूप में प्रस्तुत होती है। स्थिर बिम्बों के सृजन के लिए कवि संज्ञा पद, विशेषण, अप्रस्तुत योजना, विशेषण, विपर्यय आदि विभिन्न प्रकार के उपकरणों की सहायता लेता है–

(i) ओ शक्ति के साधक अर्थ के साधक
तू धरती को दोनों ओर से थामे हुए
(ii) रवि! कमल के नाल पर बैठा हुआ मानो
एक एड़ी पर टिकाए मौन
(iii) हिलते–चमकते बहुत हरे छोटे–बड़े पेड़
मेरे चारों ओर खड़े।
(iv) जो कि सिकुड़ा हुआ बैठा था, वो पत्थर
(v) एक धुँधली बादल–रेखा पर टिका हुआ
(vi) दोपहर बाद की धूप–छाँह में खड़ी
इंतजार की ठेले गाड़ियाँ

स्पर्श बिम्ब

स्पर्श बिम्ब का आधार करुणा–जनित वात्सलता है जिससे प्रभावोत्पादकता बढ़ जाती है। स्पर्श बिम्ब के अन्तर्गत मन:स्थितियों, शारीरिक सम्बन्धों, क्रिया–व्यापारों, शरीरस्थ चेतना, संरचण, या अन्त:वृत्ति मांसल अभिव्यक्ति हुई है। इसलिए इसे आंगिक अथवा जैविक बिम्ब भी कहते हैं। ये बिम्ब मातृ–वात्सल्य के परिचायक हैं।

(i) जहाँ, उसने् अपना सर रखा था
तुम्हारे वक्ष पर
वह स्थान बहुत ही मुकद्दस है।
(ii) गीली मुलायम लटें, आकाश
साँवलापन रात का गहरा सलोना
स्तनों के बिम्बित उभार लिए
(iii) एक नीला आईना
बेठोस सी यह चाँदनी
(iv) खसर–खसर एक चिकनाहट
हवा में मक्खन–सा घोलती है।

दृश्य बिम्ब

शमशेर की रचनाओं में दृश्य बिम्बों की प्रधानता है। शमशेर की कविता में दीप्ति रंग-बोधक बिम्ब भी दृश्य बिम्बों के अन्तर्गत स्वीकार कि, जाएँगे। प्रकृति चित्रों में मानवीकरण की प्रवृत्ति दृश्य बिम्बों को विश्वसनीयता प्रदान करती है। इनमें हवा, साँझ, चाँद, तारे, पर्वत, नदी, घास, धूप आदि के चित्र अकेलेपन को व्यक्त करते हैं। शमशेर कविता में कई दृश्य- बिम्ब स्थिर चित्रों की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं तो कई दृश्य बिम्ब मन:स्थितियों के द्योतक हैं। दृश्य या चाक्षुक बिम्ब के परिप्रेक्ष्य में शमशेर-कविता में दीप्ति बिम्ब भी सुग्राह्य हैं-

(1)

धूप कोठरी के आइने में खड़ी
हँस रही है!

रंग-योजना के प्रयोग में कवि ने विशेषकर लाल, नीला, पीला, हरा आदि रंगों का उपयोग किया है।

(2)

नील आभा विश्व की
हो रही है प्रतिपल तमस।
विगत संध्या की
रह गई है एक खिड़की खुली:
झाँकता है विगत किसका भाव।
बादलों के घने नीले केश
चपलतम आभूषणों से भरे
लहरते हैं वायु संग सब ओर।

(3) धूप में लिपटा हुआ है आसमान

(4)

गरीब के हृदय
टँगे हुए
कि रोटियाँ लिए निशान

(5)

मैली, हाथ की धुली खादी
सा है
आसमान।

शमशेर-कविता में मनोवैज्ञानिक बिम्बों की सृष्टि सुबोध सुग्राह्य है। कवि मन में सामान्य मनुष्य की तरह भाव-विचार, धारणाएँ और घटनाओं के बिम्ब-प्रतिबिम्ब बनते रहते हैं। मगर जब वह अपनी सृजनात्मक क्षमता से उसे शब्दायित करता है तो बिम्बों की रचना होती है। मनोवैज्ञानिक बिम्ब वाह्य वस्तु, आकार, रूप का प्रतिबिम्ब होते हैं। इसे मानस बिम्ब भी कहते हैं।

नाद बिम्ब

नाद बिम्ब की दृष्टि से प्राकृतिक ध्वनियों, वस्तु-ध्वनियों, संगीत ध्वनियों को शामिल कर सकते हैं। शमशेर-कविता में नाद बिम्बों का प्रयोग प्रभावशाली है।

(1)

मेघ गरजे,
और मोर दूर कई दिशाओं से
बोलने लगे-पीयूअ! पीयूअ!

(2)

हरहरा कर उठ रहा है
नव
जनमहासागर!

(3)

हवा में सन्
ज्योति के जो हरे तीखे बान
चल रहे हैं।

(5)

पहली-पहली
गुटरग गुटरग

गति बिम्ब

शमशेर को गतिशील बिम्बों के चित्रण में अभूतपूर्व हस्तलाघव प्राप्त है। इनके माध्यम से उन्होंने बहिर्जगत की गति के सन्दर्भ में आन्तरिक जगत की उस गत्वरता को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है, जिसकी ओर इसके पूर्व बहुत कम रचनाकारों की दृष्टि गई थी। कहीं तो गति-अगति के बीच एक निश्चित बिन्दु

पर सारे कार्य-व्यापार को केन्द्रित करके उन्होंने अद्‌भुत चमत्कार का सृजन किया है। ऊषा और संध्या संबंधी बिम्बों के चित्रण में हमने इस पर विचार किया है। शमशेर गति को प्रगति के साथ जोड़ते हैं-

(1) सीप-सी रंगीन लहरों के हृदय में डोल
(2) अनवरत् बह रही है।
(3) तैरती आती बहार
(4) सुर्ख फूल ओस में

चुपचाप

लुढ़कते चले जाते
(5) वह सागर
सट्‌ठा जो, उठा, और और और
(6) जोकि सिकुड़ा हुआ बैठा था वो पत्थर
सजग-सा होकर सरकने लगा आप से आप
(7) यह रात फिसलन से भरी हुई है।

स्मृति बिम्ब

मानव स्वभावतया अतीत प्रेमी होता है। वह अतीत की स्मृतियों को महत्वपूर्ण स्थान देता है। "अतीत कल्पना का लोक है, एक प्रकार का स्वप्न लोक है: इसमें तो सन्देह नहीं।.....स्मृतियॉ। हमें केवल सुखपूर्ण दिनों की झाँकियाँ नहीं समझ पड़तीं। वे हमें लीन करती हैं, हमारा मर्म स्पर्श करती हैं।"

(1)

कहीं दूर पार से
स्मृतियाँ
बहुत-सी
इकट्‌ठा हो रही हैं।

(2)

यह आसमान
चूम रहा है मेरी चौखट
मैं चाँद और सूरज को निकाल
अलमारी में रखे हुए एलबम से,

(3)

आज कहाँ वे गीत जो कल थे
गलियों-गलियों में गाए गए

क्रिया बिम्ब

(1)

एक आदमी दो पहाड़ों को कुहनियों से ठेलता
पूरब से पश्चिम को एक कदम से नापता
बढ़ रहा है।

(2)

चुम्बन की मीठी पुचकारियाँ
खिल रही कलियों को फूलों को हँसा रही

आद्य बिम्ब

शमशेर के काव्य बिम्बों की व्यंजना विशिष्ट है। उन्होंने मानस बिम्बों के साथ भावमय वैचारिक और रोमानी विविधवर्णीय बिम्बों की उम्दा अभिव्यक्ति की है। इनके अतिरिक्त उनके काव्य में प्राचीन पुराकथाओं (पुराख्यानों) से संबंधित बिम्ब भी प्रस्तुत हुए हैं। "आद्य बिम्ब सामूहिक अचेतन की सृष्टि होते हैं।.. इनकी प्रकल्पना युग ने की है। ये आदि अनुभूतियों के संस्कार रूप में आज भी मानव जाति के अचेतन मन में विद्यमान हैं, और अनेक प्रकार से अपनी अभ्यिक्ति करते हैं।" आद्य-मिथ की सृष्टि की दृष्टि से उनके काव्य में सूर्य, चाँद, धूप, मछली, साँप, शिव आदि के बिम्ब आए हैं। आद्य बिम्ब कविता को कालजयी बनाने में सहायक होते हैं। उसे विशिष्ट अर्थ-सौन्दर्य सौंपते हैं। शमशेर की 'वाम वाम वाम दिशा' कविता इसका श्रेष्ठ उदाहरण है।

(1)

एक ऋतुओं में विहँसते सूर्य
काल में (तम घोर)-

(2)

क्या शिवलोक के बीच कोई
विभाजक दीवार
खड़ी की जा सकती है

सिवाय सच्चाई की उज्ज्वलता के
(3) वरुणा के किनारे एक चक्रस्तूप है
शायद वहीं विश्व का केन्द्र है।

(4)

इक मौन कमल खिलता है
और नयी लहरियों में लगातार
हँसता है।

(5)

बिजलियों-सी कौंदली लहरें
मछलियों-सी बिछल पड़ती तड़पती लहरें
बार-बार

अलंकृत बिम्ब

अलंकृत बिम्ब कल्पनाप्रसूत होते हैं और काव्य में कलात्मक सौन्दर्य की सृष्टि करते हैं। "अलंकृत बिम्बों का एकमात्र आधार कलात्मक सौन्दर्य होता है किसी चमत्कारपूर्ण अथवा दूरान्वयी कल्पना द्वारा इस श्रेणी के बिम्बों की सृष्टि होती है।" दरअसल, अलंकृत बिम्ब वर्ण्य वस्तु-प्रसंग-दृश्यांश को अलंकारों के द्वारा प्रत्यक्ष करते हैं। शमशेर की कविता में भौतिक-प्राकृतिक दोनों तरह के दृश्यों-बिम्बों की अभिव्यक्ति हुई है, जिनसे मानसिक विनोद या रस का अनुभव होता है। अलंकृत बिम्बों में अप्रस्तुत कवि-कथ्य को अर्थवान बनाते हैं। इसमें अनुभूतियों और अर्थों का भाव सूक्ष्म स्तर पर प्रतिष्ठित होता है। यदि किसी कथ्य-अनुभव का सामान्य वर्णन किया जाए तो वह पाठक को विशेष प्रभावित नहीं कर सकता और न ही उसमें अधिक सम्प्रेषणीयता होती है। काव्य में अलंकार विधान की विशिष्टता प्रतिपादित की गई है। शमशेर की कविता में अप्रस्तुत विधान की भूमिका महत्वपूर्ण है। उनकी कविताओं की अग्रांकित पंक्तियों में विपर्यय का उपयोग कितना सुन्दर हुआ है। "कविता में बिम्ब भिन्न-भिन्न कोणों पर रखे गए दर्पण जैसे होते हैं। ज्यों-ज्यों कविता का विषय विकसित होकर आगे बढ़ता है, वह अपने विविध रूपों में इन दर्पणों में प्रतिच्छायित होता है। ये दर्पण जादू के दर्पण हैं, वे केवल विषय-वस्तु को ही नहीं प्रतिच्छायित करते हैं, वे इसे नाम और रूप भी प्रदान करते हैं।"

(1)

सूर्य मेरी पुतलियों में स्नान करता
केश वन में झिल मिलाकर डूब जाता
स्वप्न-सा निस्तेज गतचेतन कुमार

(2)

एक नीला दरिया बरस रहा है
और बहुत चौड़ी हवाएँ
मकानात है मैदान
किस कदर ऊबड़-खाबड़
मगर
एक दरिया
और हवाएँ
मेरे सीने में गूँज रही हैं।

(3)

बादलों के घने नीले केश
चपलतम आभूषणों से भरे
लहरते हैं वायु संग सब ओर।
अल्लमत यदि मैं संस्कृत में
संध्या कर ली तो तू
मुझे दोजख में डालेगा?

(4)

ईश्वर अगर मैंने अरबी में
प्रार्थना की तू मुझसे
नाराज हो जाएगा।

अप्रस्तुत को प्रस्तुत करने के लिए कवि तुलना, सादृश्य, साम्य, विपर्यय, सान्निध्य, आवेग संकर्षण तथा एकरूपता के संयोग का सामान्यतः उपयोग करता है। छायावादोत्तर कवियों में गिरिजा कुमार माथुर, अज्ञेय, धर्मवीर भारती, मुक्तिबोध, अंचल, सर्वेश्वर, श्रीकांत वर्मा, राजकमल चौधरी, धूमिल आदि की कविताओं में इसका प्रायः प्रयोग हुआ है। शमशेर के काव्य में अप्रस्तुत कहीं-कहीं आकारमूलक रूप में भी प्रस्तुत हुआ है-

(5)

शिला का खून पीती थी
वह जड़, जोकि पत्थर थी स्वयं।
सीढ़ियाँ थीं बादलों की झूलती
टहनियों-सी,
और वह पक्का चबूतरा, ढाल में चिकना:
सुतल था, आत्मा के कल्पतरु का?

जिस प्रकार उन्होंने 'पक्का चबूतरा' को उपरोक्त कविता में आकार प्रदान किया है उसी प्रकार 'सींग और नाखून' कविता में आलंकारिक बिम्बों को यूँ रूपायित किया है-

(6)

सींग और नाखून
लोहे के बख्तर कन्धों पर।
सीने में सूराख हड्डी का।
आँखों में घास-काई की नमी।
एक मुर्दा हाथ
पाँव पर टिका
उल्टी कलम थामे।
तीन तसलों में कमर का घाव सड़ चुका है।
जड़ों का भी कड़ा जाल
हो चुका पत्थर।

आकारमूलक अप्रस्तुत विधान की बड़ी प्रभावी प्रस्तुति नागार्जुन, नरेश मेहता, कुमारेन्द्र पारसनाथ सिंह, जीवन प्रकाश जोशी, जगूड़ी, रमेश गौड़ की कविताओं में हुई है। इन कवियों ने नये पन की तलाश में परम्परा की जीवन्तता को बिम्बायित किया है। उनकी कविता में जन-जीवन समाजधर्मी विविधवर्णीय रूप-रंग के बिम्ब प्रतीक हैं, जो उन्हें समकालीन समवयस्क कवियों से अलग करते हैं। शमशेर ने अप्रस्तुत विधान के अन्तर्गत उपमामूलक बिम्बों- चाँदनी, सीपी, मोती, शंख, ओंठ, नारंगी, अधर, कुहरा, धूप, छाँव, आदि के प्रयोग से ताजगी पैदा करने का सार्थक प्रयास किया है-

कुसुमों से चरनों का लोच लिए
थिरक रही हैं

भीनी भीनी सुगन्धियाँ,
इसी प्रकार-
और दरिया राग बनते हैं।-कमल
फानूस-रातें मोतियों की डाल-। दिल में
साड़ियों के से नमूने चमन में उड़ते छबीले, वहाँ
गुनगुनाता भी सजीला जिस्म वह-
जागता भी। मौन सोता भी, न जाने
एक दुनिया की। उम्मीद-सा। किस तरह!

उक्त बिम्बों के अतिरिक्त शमशेर के काव्य में अप्रसृत और उदात्त बिम्बों का विधान भी है। अप्रसृत बिम्ब उक्त सभी बिम्बों से अलग प्रतीत होता है। इसमें शब्द-विस्तार या शब्द-बाहुल्य नहीं होता। कुल मिलाकर, शमशेर के काव्य का उत्तरार्ध बिम्ब-बहुल है। ये कवि की अनुभूति को गहराई और ऊँचाई प्रदान करते हैं। उनके काव्य में जहाँ एक ओर वस्तुपरक यथार्थ बिम्ब है वहीं दूसरी ओर रोमानी यानी स्वच्छन्द बिम्बों की प्रकल्पना भी की जा सकती है। उनकी विता में प्रकृति के उपादानों और अनुभूतियों का बड़ा अनूठा तालमेल है। कहीं-कहीं साहचर्य-समन्वय भी व्यक्त हुआ है। कल्पना-शक्ति का सौष्ठव देखते ही बनता है। कलागत उपलब्धि के अर्थ में शमशेर की कविता अपना विशिष्ट मूल्य रखती है। इस दृष्टि से उनके काव्य में वाह्य उद्दीपन (शब्द-स्पर्श-रस और गंध बिम्बों) के निर्माण की प्रक्रिया बड़ी सूक्ष्म है। यूँ मूल अनुभूति की अतीतता का ज्ञान उनके बिम्बों में होता है।

बिम्बों का अस्तित्त्व मानसिक अर्थ में विशेष होता है। यदि बिम्ब स्वतन्त्र रूप से काव्य में आते हैं, तो वे उतने प्रभावी नहीं होते जितने होने चाहिए इसलिए इनकी रचना में सर्जक के विगत अनुभवों का अधिक योगदान रहता है।

शमशेर के काव्य में बिम्ब उसकी रचना तन्त्र के सम्पन्न और भाषा को समृद्ध करते हैं। उनके बिम्ब जीवन्त हैं। उनमें बासीपन नहीं है, ताजगी है। इन बिम्बों में उनका सौन्दर्य बोध निहित है। जहाँ बिम्बात्मकता नहीं है, वहाँ गद्यात्मकता सी आ गयी है। शमशेर के बिम्ब-विधान की विशेषता है कि उनकी कविताओं में वर्ण्य-विषय और बिम्ब अनायास एक-दूसरे पर आरोपित हैं। कह सकते हैं कि पूर्ववर्ती रचनाओं की अपेक्षा उत्तरवर्ती रचनाओं में (वायवियत के बावजूद) निर्मित बिम्ब लोकोन्मुखता लिए हैं। भाषा की सार्थक शक्ति-सहयोग पाकर वे पर्याप्त प्रभावशाली और आकर्षक बन गए हैं। उनके बिम्बों-प्रतीकों में

विविधता, अर्थगर्भिता और प्रयोगधर्मिता है, जो उन्हें छायावादोत्तर विशिष्ट रचनाकारों में एक नयी पहचान देती है।

मानव संसाधन विकास मंत्री श्री अर्जुन सिंह के शब्दों में, "शमशेर बहादुर सिंह आधुनिक भारतीय कविता के निर्माताओं में से एक थे, उन्होंने पूरी अर्धशती हिन्दी साहित्य की श्रीवृद्धि में समर्पित की। वे अपनी प्रयोगधर्मिता, विशिष्ट बिम्ब विधान और गहन मानवीयता के लिए स्मरण कि, जाएँगे।"ख/

13

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' हिन्दी कविता के छायावादी युग के चार प्रमुख स्तंभोंख्क, में से एक माने जाते हैं। वे जयशंकर प्रसाद, सुमित्रनंदन पंत और महादेवी वर्मा के साथ हिन्दी साहित्य में छायावाद के प्रमुख स्तंभ माने जाते हैं। उन्होंने कई कहानियाँ, उपन्यास और निबंध भी लिखे हैं, किन्तु उनकी ख्याति विशेषरूप से कविता के कारण ही है।

जीवन परिचय

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' का जन्म बंगाल की महिषादल रियासत (जिला मेदिनीपुर) में माघ शुक्ल 11, संवत् 1955, तदनुसार 21 फरवरी, सन् 1899 में हुआ था। वसंत पंचमी पर उनका जन्मदिन मनाने की परंपरा 1930 में प्रारंभ हुई। उनका जन्म मंगलवार को हुआ था। जन्म-कुण्डली बनाने वाले पंडित के कहने से उनका नाम सुर्जकुमार रखा गया। उनके पिता पंडित रामसहाय तिवारी उन्नाव (बैसवाड़ा) के रहने वाले थे और महिषादल में सिपाही की नौकरी करते थे। वे मूल रूप से उत्तर प्रदेश के उन्नाव जिले के गढ़ाकोला नामक गाँव के निवासी थे।

निराला की शिक्षा हाई स्कूल तक हुई। बाद में हिन्दी संस्कृत और बांग्ला का स्वतंत्र अध्ययन किया। पिता की छोटी-सी नौकरी की असुविधाओं और मान-अपमान का परिचय निराला को आरम्भ में ही प्राप्त हुआ। उन्होंने

दलित-शोषित किसान के साथ हमदर्दी का संस्कार अपने अबोध मन से ही अर्जित किया। तीन वर्ष की अवस्था में माता का और बीस वर्ष का होते-होते पिता का देहांत हो गया। अपने बच्चों के अलावा संयुक्त परिवार का भी बोझ निराला पर पड़ा। पहले महायुद्ध के बाद जो महामारी फैली उसमें न सिर्फ पत्नी मनोहरा देवी का, बल्कि चाचा, भाई और भाभी का भी देहांत हो गया। शेष कुनबे का बोझ उठाने में महिषादल की नौकरी अपर्याप्त थी। इसके बाद का उनका सारा जीवन आर्थिक-संघर्ष में बीता। निराला के जीवन की सबसे विशेष बात यह है कि कठिन से कठिन परिस्थितियों में भी उन्होंने सिद्धांत त्यागकर समझौते का रास्ता नहीं अपनाया, संघर्ष का साहस नहीं गंवाया। जीवन का उत्तरार्द्ध इलाहाबाद में बीता। वहीं दारागंज मुहल्ले में स्थित रायसाहब की विशाल कोठी के ठीक पीछे बने एक कमरे में 15 अक्टूबर 1961 को उन्होंने अपनी इहलीला समाप्त की।

कार्यक्षेत्र

सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' की पहली नियुक्ति महिषादल राज्य में ही हुई। उन्होंने 1918 से 1922 तक यह नौकरी की। उसके बाद संपादन, स्वतंत्र लेखन और अनुवाद कार्य की ओर प्रवृत्त हुए। 1922 से 1923 के दौरान कोलकाता से प्रकाशित 'समन्वय' का संपादन किया, 1923 के अगस्त से मतवाला के संपादक मंडल में कार्य किया। इसके बाद लखनऊ में गंगा पुस्तक माला कार्यालय में उनकी नियुक्ति हुई जहाँ वे संस्था की मासिक पत्रिका सुधा से 1935 के मध्य तक संबद्ध रहे। 1935 से 1940 तक का कुछ समय उन्होंने लखनऊ में भी बिताया। इसके बाद 1942 से मृत्यु पर्यन्त इलाहाबाद में रह कर स्वतंत्र लेखन और अनुवाद कार्य किया। उनकी पहली कविता जन्मभूमि प्रभा नामक मासिक पत्र में जून 1920 में, पहला कविता संग्रह 1923 में अनामिका नाम से, तथा पहला निबंध बंग भाषा का उच्चारण अक्टूबर 1920 में मासिक पत्रिका सरस्वती में प्रकाशित हुआ।

अपने समकालीन अन्य कवियों से अलग उन्होंने कविता में कल्पना का सहारा बहुत कम लिया है और यथार्थ को प्रमुखता से चित्रित किया है। वे हिन्दी में मुक्तछंद के प्रवर्तक भी माने जाते हैं। 1930 में प्रकाशित अपने काव्य संग्रह परिमल की भूमिका में वे लिखते हैं-

मनुष्यों की मुक्ति की तरह कविता की भी मुक्ति होती है। मनुष्यों की मुक्ति कर्म के बंधन से छुटकारा पाना है और कविता की मुक्ति छन्दों के शासन् से अलग हो जाना है। जिस तरह मुक्त मनुष्य कभी किसी तरह दूसरों के प्रतिकूल आचरण नहीं करता, उसके तमाम कार्य औरों को प्रसन्न करने के लिए होते हैं फिर भी स्वतंत्र। इसी तरह कविता का भी हाल है।

लेखनकार्य

निराला ने 1920 ई. के आसपास से लेखन कार्य आरंभ किया। उनकी पहली रचना 'जन्मभूमि' पर लिखा गया एक गीत था। लंबे समय तक निराला की प्रथम रचना के रूप में प्रसिद्ध 'जूही की कली' शीर्षक कविता, जिसका रचनाकाल निराला ने स्वयं 1916 ई. बतलाया था, वस्तुत: 1921 ई. के आसपास लिखी गयी थी तथा 1922 ई. में पहली बार प्रकाशित हुई थी। कविता के अतिरिक्त कथासाहित्य तथा गद्य की अन्य विधाओं में भी निराला ने प्रभूत मात्र में लिखा है।

प्रकाशित कृतियाँ

काव्यसंग्रह

अनामिका (1923)

परिमल (1930)

गीतिका (1936)

अनामिका (द्वितीय) (1939) (इसी संग्रह में सरोज स्मृति और राम की शक्तिपूजा जैसी प्रसिद्ध कविताओं का संकलन है।

तुलसीदास (1939)

कुकुरमुत्ता (1942)

अणिमा (1943)

बेला (1946)

नये पत्ते (1946)

अर्चना(1950)

आराधना (91953)

गीत कुंज (1954)

सांध्य काकली
अपरा (संचयन)

उपन्यास

अप्सरा (1931)
अलका (1933)
प्रभावती (1936)
निरुपमा (1936)
कुल्ली भाट (1938-39)
बिल्लेसुर बकरिहा (1942)
चोटी की पकड़ (1946)
काले कारनामे (1950) 'अपूर्ण'
चमेली (अपूर्ण)
इन्दुलेखा (अपूर्ण)

कहानी संग्रह

लिली (1934)
सखी (1935)
सुकुल की बीवी (1941)
चतुरी चमार (1945) 'सखी' संग्रह की कहानियों का ही इस नये नाम से पुनर्प्रकाशन।,

देवी (1948) यह संग्रह वस्तुतः पूर्व प्रकाशित संग्रहों से संचयन है। इसमें एकमात्र नयी कहानी 'जान की !' संकलित है।,

निबन्ध-आलोचना

रवीन्द्र कविता कानन (1929)
प्रबंध पद्म (1934)
प्रबंध प्रतिमा (1940)
चाबुक (1942)
चयन (1957)
संग्रह (1963)

पुराण कथा

महाभारत (1939)
रामायण की अन्तर्कथाएँ (1956)

बालोपयोगी साहित्य

भक्त ध्रुव (1926)
भक्त प्रहलाद (1926)
भीष्म (1926)
महाराणा प्रताप (1927)
सीखभरी कहानियाँ (ईसप की नीतिकथाएँ) 969,

अनुवाद

रामचरितमानस (विनय-भाग)-1948 (खड़ीबोली हिन्दी में पद्यानुवाद)
आनंद मठ (बांग्ला से गद्यानुवाद)
विष वृक्ष
कृष्णकांत का वसीयतनामा
कपालकुंडला
दुर्गेश नन्दिनी
राज सिंह
राजरानी
देवी चौधरानी
युगलांगुलीय
चन्द्रशेखर
रजनी
श्रीरामकृष्णवचनामृत (तीन खण्डों में)
परिव्राजक
भारत में विवेकानंद
राजयोग (अंशानुवाद)

रचनावली

निराला रचनावली नाम से 8 खण्डों में पूर्व प्रकाशित एवं अप्रकाशित सम्पूर्ण रचनाओं का सुनियोजित प्रकाशन (प्रथम संस्करण-1983)

सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' की काव्यकला की सबसे बड़ी विशेषता है चित्रण-कौशल। आंतरिक भाव हो या बाह्य जगत के दृश्य-रूप, संगीतात्मक ध्वनियां हो या रंग और गंध, सजीव चरित्र हों या प्राकृतिक दृश्य, सभी अलग-अलग लगनेवाले तत्त्वों को घुला-मिलाकर निराला ऐसा जीवंत चित्र उपस्थित करते हैं कि पढ़ने वाला उन चित्रों के माध्यम से ही निराला के मर्म तक पहुँच सकता है। निराला के चित्रों में उनका भावबोध ही नहीं, उनका चिंतन भी समाहित रहता है। इसलिए उनकी बहुत-सी कविताओं में दार्शनिक गहराई उत्पन्न हो जाती है। इस नए चित्रण-कौशल और दार्शनिक गहराई के कारण अक्सर निराला की कविताऐं कुछ जटिल हो जाती हैं, जिसे न समझने के नाते विचारक लोग उन पर दुरूहता आदि का आरोप लगाते हैं। उनके किसान-बोध ने ही उन्हें छायावाद की भूमि से आगे बढ़कर यथार्थवाद की नई भूमि निर्मित करने की प्रेरणा दी। विशेष स्थितियों, चरित्रों और दृश्यों को देखते हुए उनके मर्म को पहचानना और उन विशिष्ट वस्तुओं को ही चित्रण का विषय बनाना, निराला के यथार्थवाद की एक उल्लेखनीय विशेषता है। निराला पर अध्यात्मवाद और रहस्यवाद जैसी जीवन-विमुख प्रवृत्तियों का भी असर है। इस असर के चलते वे बहुत बार चमत्कारों से विजय प्राप्त करने और संघर्षों का अंत करने का सपना देखते हैं। निराला की शक्ति यह है कि वे चमत्कार के भरोसे अकर्मण्य नहीं बैठ जाते और संघर्ष की वास्तविक चुनौती से आँखें नहीं चुराते। कहीं-कहीं रहस्यवाद के फेर में निराला वास्तविक जीवन-अनुभवों के विपरीत चलते हैं। हर ओर प्रकाश फैला है, जीवन आलोकमय महासागर में डूब गया है, इत्यादि ऐसी ही बातें हैं। लेकिन यह रहस्यवाद निराला के भावबोध में स्थायी नहीं रहता, वह क्षणभंगुर ही साबित होता है। अनेक बार निराला शब्दों, ध्वनियों आदि को लेकर खिलवाड़ करते हैं। इन खिलवाड़ों को कला की संज्ञा देना कठिन काम है। लेकिन सामान्यत: वे इन खिलवाड़ों के माध्यम से बड़े चमत्कारपूर्ण कलात्मक प्रयोग करते हैं। इन प्रयोगों की विशेषता यह है कि वे विषय या भाव को अधिक प्रभावशाली रूप में व्यक्त करने में सहायक होते हैं। निराला के प्रयोगों में एक विशेष प्रकार के साहस और सजगता के दर्शन होते हैं। यह साहस और सजगता ही निराला को अपने युग के कवियों में अलग और विशिष्ट बनाती है।

लिली सूर्यकांत त्रिपाठी निराला

पद्मा के चन्द्र-मुख पर षोडश कला की शुभ्र चन्द्रिका अम्लान खिल रही है। एकान्त कुंज की कली-सी प्रणय के वासन्ती मलयस्पर्श से हिल उठती, विकास के लिए व्याकुल हो रही है।

पद्मा की प्रतिभा की प्रशंसा सुनकर उसके पिता ऑनरेरी मैजिस्ट्रेट पण्डित रामेश्वरजी शुक्ल उसके उज्ज्वल भविष्य पर अनेक प्रकार की कल्पनाएँ किया करते हैं। योग्य वर के अभाव से उसका विवाह अब तक रोक रक्खा है। मैट्रिक परीक्षा में पद्मा का सूबे में पहला स्थान आया था। उसे वृत्ति मिली थी। पत्नी को, योग्य वर न मिलने के कारण विवाह रूका हुआ है, शुक्लजी समझा देते हैं। साल-भर से कन्या को देखकर माता भविष्य-शंका से कांप उठती हैं।

पद्मा काशी विश्वविद्यालय के कला-विभाग में दूसरे साल की छात्र है। गर्मियों की छुट्टी है, इलाहाबाद घर आयी हुई है। अबके पद्मा का उभार, उसका रंग-रूप, उसकी चितवन-चलन-कौशल-वार्तालाप पहले से सभी बदल गये हैं। उसके हृदय में अपनी कल्पना से कोमल सौन्दर्य की भावना, मस्तिष्क में लोकाचार से स्वतन्त्र अपने उच्छृंखल आनुकूल्य के विचार पैदा हो गये हैं। उसे निस्संकोच चलती - फिरती, उठती-बैठती, हँसती-बोलती देखकर माता हृदय के बोलवाले तार से कुछ और ढीली तथा बेसुरी पड़ गयी हैं।

एक दिन सन्ध्या के डूबते सूर्य के सुनहले प्रकाश में, निरभ्र नील आकाश के नीचे, छत पर, दो कुर्सियाँ डलवा माता और कन्या गंगा का रजत-सौन्दर्य एकटक देख रही थीं। माता पद्मा की पढ़ाई, कॉलेज की छात्रओं की संख्या, बालिकाओं के होस्टल का प्रबन्ध आदि बातें पूछती हैं, पद्मा उत्तर देती है। हाथ में है हाल की निकली स्ट्रैंड मैगजीन की एक प्रति। तस्वीरें देखती जाती है। हवा का एक हलका झोंका आया, खुले रेशमी बाल, सिर से साड़ी को उड़ाकर, गुदगुदाकर, चला गया। 'सिर ढक लिया करो, तुम बेहया हुई जाती हो।' माता ने रूखाई से कहा। पद्मा ने सिर पर साड़ी की जरीदार किनारी चढ़ा ली, आँखें नीची कर किताब के पन्ने उलटने लगी।

'पद्मा!' गम्भीर होकर माता ने कहा।

'जी!' चलते हुए उपन्यास की एक तस्वीर देखती हुई नम्रता से बोली।

मन से अपराध की छाप मिट गयी, माता की वात्सल्य-सरिता में कुछ देर के लिए बाढ़-सी आ गयी, उठते उच्छ्वास से बोली, 'कानपुर में एक नामी वकील महेशप्रसाद त्रिपाठी हैं।'

'हूँ' एक दूसरी तस्वीर देखती हुई।

'उनका लड़का आगरा युनिवर्सिटी से एम।ए। में इस साल फर्स्ट क्लास फर्स्ट आया है।'

'हूँ' पद्मा ने सिर उठाया। आँखें प्रतिभा से चमक उठीं।

'तेरे पिताजी को मैंने भेजा था, वह परसों देखकर लौटे हैं। कहते थे, लड़का हीरे का टुकड़ा, गुलाब का फूल है। बातचीत दस हजार में पक्की हो गयी है।'

'हूँ' मोटर की आवाज पा पद्मा उठकर छत के नीचे देखने लगी। हर्ष से हृदय में तरंगें उठने लगीं। मुस्किराहट दबाकर आप ही में हँसती हुई चुपचाप बैठ गयी।

माता ने सोचा, लड़की बड़ी हो गयी है, विवाह के प्रसंग से प्रसन्न हुई है। खुलकर कहा, 'श्मैं बहुत पहले से तेरे पिताजी से कह रही थी, वह तेरी पढ़ाई के विचार में पड़े थे।'

नौकर ने आकर कहा, ''राजेन बाबू मिलने आये हैं।'

पद्मा की माता ने एक कुर्सी डाल देने के लिए कहा। कुर्सी डालकर नौकर राजेन बाबू को बुलाने नीचे उतर गया। तब तक दूसरा नौकर रामेश्वरजी का भेजा हुआ पद्मा की माता के पास आया। कहा, 'जरूरी काम से कुछ देर के लिए पण्डितजी जल्द बुलाते हैं।'

जीने से पद्मा की माता उतर रही थीं, रास्ते में राजेन्द्र से भेंट हुई। राजेन्द्र ने हाथ जोड़कर प्रणाम किया। पद्मा की माता ने कन्धे पर हाथ रखकर आशिर्वाद दिया और कहा, 'चलो, पद्मा छत पर है, बैठो, मैं अभी आती हूँ।'

राजेन्द्र जज का लड़का है, पद्मा से तीन साल बड़ा, पढ़ाई में भी। पद्मा अपराजिता बड़ी-बड़ी आँखों की उत्सुकता से प्रतीक्षा में थी, जब से छत से उसने देखा था।

'आइए, राजेन बाबू, कुशल तो है?' पद्मा ने राजेन्द्र का उठकर स्वागत किया। एक कुर्सी की तरफ बैठने के लिए हाथ से इंगित कर खड़ी रही। राजेन्द्र बैठ गया, पद्मा भी बैठ गयी।

'राजेन, तुम उदास हो!'

'तुम्हारा विवाह हो रहा है?' राजेन्द्र ने पूछा।

पद्मा उठकर खड़ी हो गयी। बढ़कर राजेन्द्र का हाथ पकड़कर बोली, 'श्राजेन, तुम्हें मुझ पर विश्वास नहीं? जो प्रतिज्ञा मैंने की है, हिमालय की तरह उस पर अटल रहूँगी।'

पद्मा अपनी कुर्सी पर बैठ गयी। मैगजीन खोल उसी तरह पन्नों में नजर गड़ा दी। जीने से आहट मालूम दी।

माता निगरानी की निगाह से देखती हुई आ रही थीं। प्रकृति स्तब्ध थी। मन में वैसी ही अन्वेषक चपलता।

'क्यों बेटा, तुम इस साल बी।ए। हो गये?' हँसकर पूछा।

'जी हाँ।' सिर झुकाये हुए राजेन्द्र ने उत्तर दिया।

'तुम्हारा विवाह कब तक करेंगे तुम्हारे पिताजी, जानते हो'

'जी नहीं।'

'तुम्हारा विचार क्या है?'

'आप लोगों से आज्ञा लेकर विदा होने के लिए आया हूँ, विलायत भेज रहे हैं पिताजी।' नम्रता से राजेन्द्र ने कहा।

'क्या बैरिस्टर होने की इच्छा है?' पद्मा की माता ने पूछा।

'जी हाँ।'

'तुम साहब बनकर विलायत से आना और साथ एक मेम भी लाना, मैं उसकी शुद्धि कर लूँगी।' पद्मा हँसकर बोली।

नौकर ने एक तश्तरी पर दो प्यालों में चाय दी – दो रकाबियों पर कुछ बिस्कुट और केक। दूसरा एक मेज उठा लिया। राजेन्द्र और पद्मा की कुर्सी के बीच रख दी, एक धुली तौलिया ऊपर से बिछा दी। सासर पर प्याले तथा रकाबियों पर बिस्कुट और केक रखकर नौकर पानी लेने गया, दूसरा आज्ञा की प्रतीक्षा में खड़ा रहा।

'मैं निश्चय कर चुका हूँ, जबान भी दे चुका हूँ। अबके तुम्हारी शादी कर दूँगा।' पण्डित रामेश्वरजी ने कन्या से कहा।

'लेकिन मैंने भी निश्चय कर लिया है, डिग्री प्राप्त करने से पहले विवाह न करूँगी।' सिर झुकाकर पद्मा ने जवाब दिया।

'मैं मैजिस्ट्रेट हूँ बेटी, अब तक अक्ल ही की पहचान करता रहा हूँ, शायद इससे ज्यादा सुनने की तुम्हें इच्छा न होगी।' गर्व से रामेश्वरजी टहलने लगे।

पद्मा के हृदय के खिले गुलाब की कुल पंखडिया हवा के एक पुरजोर झोंके से काँप उठीं। मुक्ताओं-सी चमकती हुई दो बूँदें पलकों के पत्रों से झड़ पड़ी। यही उसका उत्तर था।

'राजेन जब आया, तुम्हारी माता को बुलाकर मैंने जीने पर नौकर भेज दिया था, एकान्त में तुम्हारी बातें सुनने के लिए। तुम हिमालय की तरह अटल हो, मैं भी वर्तमान की तरह सत्य और दृढ़।'

रामेश्वरजी ने कहा, 'शतुम्हें इसलिए मैंने नहीं पढ़ाया कि तुम कुल-कलंक बनो।'

'आप यह सब क्या कह रहे हैं?'

'चुप रहो। तुम्हें नहीं मालूम? तुम ब्राह्मण-कुल की कन्या हो, वह क्षत्रिय-घराने का लड़का है- ऐसा विवाह नहीं हो सकता।' रामेश्वरजी की साँस तेज चलने लगीं, आँखें भौंहों से मिल गयीं।

'आप नहीं समझे मेरे कहने का मतलब।' पद्मा की निगाह कुछ उठ गयी।

'मैं बातों का बनाना आज दस साल से देख रहा हूँ। तू मुझे चराती है? वह बदमाश !'

'इतना बहुत है। आप अदालत के अफसर है! अभी-अभी आपने कहा था, अब तक अक्ल की पहचान करते रहे हैं, यह आपकी अक्ल की पहचान है! आप इतनी बड़ी बात राजेन्द्र को उसके सामने कह सकते हैं? बतलाइए, हिमालय की तरह अटल सुन लिया, तो इससे आपने क्या सोचा?'

आग लग गयी, जो बहुत दिनों से पद्मा की माता के हृदय में सुलग रही थी।

'हट जा मेरी नजरों से बाहर, मैं समझ गया।' रामेश्वर जी क्रोध से काँपने लगे।

'आप गलती कर रहे हैं, आप मेरा मतलब नहीं समझे, मैं भी बिना पूछे हुए बतलाकर कमजोर नहीं बनना चाहती।'

पद्मा जेठ की लू में झुलस रही थी, स्थल पद्म-सा लाल चेहरा तम-तमा रहा था। आँखों की दो सीपियाँ पुरस्कार की दो मुक्ताएँ लिये सगर्व चमक रही थीं।

रामेश्वरजी भ्रम में पड़ गये। चक्कर आ गया। पास की कुर्सी पर बैठ गये। सर हथेली से टेककर सोचने लगे। पद्मा उसी तरह खड़ी दीपक की निष्कम्प शिखा-सी अपने प्रकाश में जल रही थी।

'क्या अर्थ है, मुझे बता।' माता ने बढ़कर पूछा।

'मतलब यह, राजेन को सन्देह हुआ था, मैं विवाह कर लूँगी - यह जो पिताजी पक्का कर आये हैं, इसके लिए मैंने कहा था कि मैं हिमालय की तरह अटल हूँ, न कि यह कि मैं राजन के साथ विवाह करूँगी। हम लोग कह चुके थे कि पढ़ाई का अन्त होने पर दूसरी चिन्ता करेंगे।'

पद्मा उसी तरह खड़ी सीधे ताकती रही।

'तू राजेन को प्यार नहीं करती?' आँख उठाकर रामेश्वरजी ने पूछा।

'प्यार? करती हूँ।'

'करती है?'

'हाँ, करती हूँ।'

'बस, और क्या?'

'पिता!'

पद्मा की आबदार आँखों से आँसुओं के मोती टूटने लगे, जो उसके हृदय की कीमत थे, जिनका मूल्य समझनेवाला वहाँ कोई न था।

माता ने ठोढ़ी पर एक उँगली रख रामेश्वरजी की तरफ देखकर कहा, 'श्प्यार भी करती है, मानती भी नहीं, अजीब लड़की है।'

'चुप रहो।' पद्मा की सजल आँखें भौंहों से सट गयीं, 'श्विवाह और प्यार एक बात है? विवाह करने से होता है, प्यार आप होता है। कोई किसी को प्यार करता है, तो वह उससे विवाह भी करता है? पिताजी जज साहब को प्यार करते हैं, तो क्या इन्होंने उनसे विवाह भी कर लिया है?'

रामेश्वरजी हँस पड़े।

रामेश्वरजी ने शंका की दृष्टि से डाक्टर से पूछा, 'क्या देखा आपने डाक्टर साहब?'

'बुखार बड़े जोर का है, अभी तो कुछ कहा नहीं जा सकता।

जिस्म की हालत अच्छी नहीं, पूछने से कोई जवाब भी नहीं देती। कल तक अच्छी थी, आज एकाएक इतने जोर का बुखार, क्या सबब है?' डॉक्टर ने प्रश्न की दृष्टि से रामेश्वरजी की तरफ देखा।

रामेश्वरजी पत्नी की तरफ देखने लगे।

डाक्टर ने कहा, 'श्अच्छा, मैं एक नुस्खा लिखे देता हूँ, इससे जिस्म की हालत अच्छी रहेगी। थोड़ी-सी बर्फ मँगा लीजिएगा। आइस-बैग तो क्यों होगा आपके यहाँ? एक नौकर मेरे साथ भेज दीजिए, मैं दे दूँगा। इस वक्त एक सौ चार डिग्री बुखार है। बर्फ डालकर सिर पर रखिएगा। एक सौ एक तक आ जाय, तब जरूरत नहीं।'

डॉक्टर चले गये। रामेश्वरजी ने अपनी पत्नी से कहा, 'यह एक दूसरा फसाद खड़ा हुआ। न तो कुछ कहते बनता है, न करते। मैं कौम की भलाई चाहता था, अब खुद ही नकटों का सिरताज हो रहा हूँ। हम लोगों में अभी तक यह बात न थी कि ब्राह्मण की लड़की का किसी क्षत्रिय लड़के से विवाह होता।

हाँ, ऊँचे कुल की लड़कियाँ ब्राह्मणों के नीचे कुलों में गयी हैं। लेकिन, यह सब आखिर कौम ही में हुआ है।'

'तो क्या किया जाय?' स्फारित, स्फुरित आँखें, पत्नी ने पूछा।

'जज साहब से ही इसकी बचत पूछूंगा। मेरी अक्ल अब और नहीं पहुँचती। अरे छीटा!'

'जी!' छीटा चिलम रखकर दौड़ा।

'जज साहब से मेरा नाम लेकर कहना, जल्द बुलाया है।'

'और भैया बाबू को भी बुला लाऊँ?'

'नहीं-नहीं।' रामेश्वरजी की पत्नी ने डांट दिया।

जज साहब पुत्र के साथ बैठे हुए वार्तालाप कर रहे थे। इंग्लैंड के मार्ग, रहन-सहन, भोजन-पान, अदब-कायदे का बयान कर रहे थे। इसी समय छीटा बँगले पर हाजिर हुआ, और झुककर सलाम किया। जज साहब ने आँख उठाकर पूछा, ''कैसे आये छीटाराम?'

'हुजूर को सरकार ने बुलाया है, और कहा है, बहुत जल्द आने के लिए कहना।'

'क्यों?'

'बीबी रानी बीमार हैं, डाक्टर साहब आये थे, और हुजूर ' बाकी छीटा ने कह ही डाला था।

'और क्या?'

'हुजूर ' छीटा ने हाथ जोड़ लिये। उसकी आँखें डबडबा आयीं।

जज साहब बीमारी कड़ी समझकर घबरा गये! ड्राइवर को बुलाया। छीटा चल दिया। ड्राइवर नहीं था। जज साहब ने राजेन्द्र से कहा, 'श्जाओ, मोटर ले आओ।चलें, देखें, क्या बात है।'

राजेन्द्र को देखकर रामेश्वरजी सूख गये। टालने की कोई बात न सूझी। कहा, 'श्बेटा, पद्मा को बुखार आ गया है, चलो, देखो, तब तक मैं जज साहब से कुछ बातें करता हूँ।'

राजेन्द्र उठ गया। पद्मा के कमरे में एक नौकर सिर पर आइस-बैग रक्खे खड़ा था। राजेन्द्र को देखकर एक कुर्सी पलंग के नजदीक रख दी।

'पद्मा!'

'राजेन!'

पद्मा की आँखों से टप-टप गर्म आँसू गिरने लगे। पद्मा को एकटक प्रश्न की दृष्टि से देखते हुए राजेन्द्र ने रूमाल से उसके आँसू पोंछ दिये।

सिर पर हाथ रक्खा, बड़े जोर से धड़क रही थी।

पद्मा ने पलकें मूंद ली, नौकर ने फिर सिर पर आइस-बैग रख दिया।

सिरहाने थरमामीटर रक्खा था। झाड़कर, राजेन्द्र ने आहिस्ते से बगल में लगा दिया। उसका हाथ बगल से सटाकर पकड़े रहा। नजर कमरे की घड़ी की तरफ थी।

निकालकर देखा, बुखार एक सौ तीन डिग्री था।

अपलक चिन्ता की दृष्टि से देखते हुए राजेन्द्र ने पूछा, 'श्पद्मा, तुम कल तो अच्छी थीं, आज एकाएक बुखार कैसे आ गया?'

पद्मा ने राजेन्द्र की तरफ करवट ली, कुछ न कहा।

'पद्मा, मैं अब जाता हूँ।'

ज्वर से उभरी हुई बड़ी-बड़ी आँखों ने एक बार देखा, और फिर पलकों के पर्दे में मौन हो गयीं।

अब जज साहब और रामेश्वरजी भी कमरे में आ गये।

जज साहब ने पद्मा के सिर पर हाथ रखकर देखा, फिर लड़के की तरफ निगाह फेरकर पूछा, 'श्क्या तुमने बुखार देखा है?'

'जी हाँ, देखा है।'

'कितना है?'

'एक सौ तीन डिग्री।'

'मैंने रामेश्वरजी से कह दिया है, तुम आज यही रहोगे। तुम्हें यहाँ से कब जाना है? - परसों न?'

'जी।'

'कल सुबह बतलाना घर आकर, पद्मा की हालत-कैसी रहती है। और रामेश्वरजी, डॉक्टर की दवा करने की मेरे खयाल से कोई जरूरत नहीं।'

'जैसा आप कहें।' सम्प्रदान-स्वर से रामेश्वरजी बोले।

जज साहब चलने लगे। दरवाजे तक रामेश्वरजी भी गये। राजेन्द्र वहीं रह गया। जज साहब ने पीछे फिरकर कहा, ''आप घबराइए मत, आप पर समाज का भूत सवार है।' मन-ही-मन कहा, 'श्कैसा बाप और कैसी लड़की!

तीन साल बीत गये। पद्मा के जीवन में वैसा ही प्रभात, वैसा ही आलोक भरा हुआ है। वह रूप, गुण, विद्या और ऐश्वर्य की भरी नदी, वैसी ही अपनी पूर्णता से

अदृश्य की ओर, वेग से बहती जा रही है। सौन्दर्य की वह ज्योति-राशि स्नेह-शिखाओं से वैसी ही अम्लान स्थिर है। अब पद्मा एम।ए। क्लास में पढ़ती है।

वह सभी कुछ है, पर वह रामेश्वरजी नहीं हैं। मृत्यु के कुछ समय पहले उन्होंने पद्मा को एक पत्र में लिखा था, 'श्मैंने तुम्हारी सभी इच्छाएँ पूरी की हैं,पर अभी तक मेरी एक भी इच्छा तुमने पूरी नहीं की। शायद मेरा शरीर न रहे, तुम मेरी सिर्फ एक बात मानकर चलो- राजेन्द्र या किसी अपर जाति के लड़के से विवाह न करना। बस।'

इसके बाद से पद्मा के जीवन में आश्चर्यकर परिवर्तन हो गया। जीवन की धारा ही पलट गयी। एक अद्भुत स्थिरता उसमें आ गयी। जिस गति के विचार ने उसके पिता को इतना दुर्बल कर दिया था, उसी जाति की बालिकाओं को अपने ढंग पर शिक्षित कर, अपने आदर्श पर लाकर पिता की दुर्बलता से प्रतिशोध लेने का उसने् निश्चय कर लिया।

राजेन्द्र बैरिस्टर होकर विलायत से आ गया। पिता ने कहा, 'श्बेटा, अब अपना काम देखो।' राजेन्द्र ने कहा, ''जरा और सोच लूँ, देश की परिस्थिति ठीक नहीं।'

'पद्मा!' राजेन्द्र ने पद्मा को पकड़कर कहा।

पद्मा हँस दी। ''तुम यहाँ कैसे राजेन?' पूछा।

'बैरिस्टरी में जी नहीं लगता पद्मा, बड़ा नीरस व्यवसाय है, बड़ा बेदर्द। मैंने देश की सेवा का व्रत ग्रहण कर लिया है, और तुम?'

'मैं भी लड़कियाँ पढ़ाती हूँ - तुमने विवाह तो किया होगा?'

'हाँ, किया तो है।' हँसकर राजेन्द्र ने कहा।

पद्मा के हृदय पर जैसे बिजली टूट पड़ी, जैसे तुषार की प्रहत पद्मिनी क्षण भर में स्याह पड़ गयी। होश में आ, अपने को सँभालकर कृत्रिम हँसी रँगकर पूछा,

'किसके साथ किया?'

'लिली के साथ।' उसी तरह हँसकर राजेन्द्र बोला।

'लिली के साथ!' पद्मा स्वर में काँप गयी।

'तुम्हीं ने तो कहा था-विलायत जाना और मेम लाना।'

पद्मा की आँखें भर आयीं।

हँसकर राजेन्द्र ने कहा, ''यही तुम अंगेजी की एम.ए. हो? लिली के मानी?'

14

उदय प्रकाश

उदय प्रकाश चर्चित कवि, कथाकार, पत्रकार और फिल्मकार हैं। आपकी कुछ कृतियों के अंग्रेजी, जर्मन, जापानी एवं अन्य अंतरराष्ट्रीय भाषाओं में अनुवाद भी उपलब्ध हैं। लगभग समस्त भारतीय भाषाओं में रचनाएं अनूदित हैं। इनकी कई कहानियों के नाट्यरूपांतर और सफल मंचन हुए हैं। 'उपरांत' और 'मोहन दास' के नाम से इनकी कहानियों पर फीचर फिल्में भी बन चुकी हैं, जिसे अंतरराष्ट्रीय सम्मान मिल चुके हैं। उदय प्रकाश स्वयं भी कई टी.वी.धारावाहिकों के निर्देशक-पटकथाकार रहे हैं। सुप्रसिद्ध राजस्थानी कथाकार विजयदान देथा की कहानियों पर बहु चर्चित लघु फिल्में प्रसार भारती के लिए निर्देशित-निर्मित की हैं। भारतीय कृषि का इतिहास पर महत्वपूर्ण पंद्रह कड़ियों का सीरियल 'कृषि-कथा' राष्ट्रीय चैनल के लिए निर्देशित कर चुके हैं।

निजी जीवन

भूमिका

प्रकाश का जन्म 1 जनवरी सन् 1952 में भारत के मध्य प्रदेश में स्थित शहडोल जिले के सीतापुर गाँव में हुआ। इनका बालपन और प्राथमिक शिक्षा यहीं पूर्ण हुई। इन्होंने विज्ञान में स्नातक डिग्री तथा स्वर्ण पदक सहित सागर विश्वविद्यालय से हिंदी साहित्य में स्नातकोत्तर की डिग्री प्राप्त की। 1975 से

1976 तक वे जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय में एक शोध छात्र रहे। इन्हें कम्युनिस्ट पार्टी को समर्थन देने के जुर्म के लिए कैद किया गया और अंततः इनकी राजनीति में रूचि न रही।

उदय प्रकाश की कहानियों में जहां कविताओं जैसी रवानगी और सरसता है, वहीं वे समय की विसंगतियों की ओर बहुत गहराई से ध्यान आकर्षित करती हैं। रूसी, अंग्रेजी, जापानी, डच और जर्मन भाषा में उनकी कविताओं का अनुवाद हो चुका है और लगभग सभी राष्ट्रीय-अंतरराष्ट्रीय कविता संकलनों में उनकी कविताएं संग्रहीत हैं। 2004 में हॉलैंड के प्रख्यात 'अंतरराष्ट्रीय कविता उत्सव' में वे भारतीय कवि के रूप में भाग ले चुके हैं। इनकी कई कहानियों के नाट्यरूपंतर और सफल मंचन हुए हैं। 'उपरांत'

जन्म स्थान

भारत के प्रख्यात कवि, कथाकार, पत्रकार और फिल्मकार उदय प्रकाश का जन्म गाँव सीतापुर जिला अनूपपुर, मध्य प्रदेश में 1 जनवरी, 1952 में हुआ था। 'मैं मध्यप्रदेश के अनूपपुर जिले के एक छोटे से गांव सीतापुर में पैदा हुआ। आज भी वहां मिट्टी के 18 घर हैं। हमारा घर पक्का और पुराना है। गांव के पीछे एक बहुत बड़ी सोन नदी बहती है। जहां से सोन का उद्गम है उसी से कुछ दूर नर्मदा का उद्गम है। अमरकंटक मेरे गांव से पैदल जाएं, तो 23 किलोमीटर दूर है। मेरा जन्म हुआ तब वहां बिजली नहीं थी। हम लोग लालटेन और ढिबरी की रोशनी में पढ़ते थे। पुल नहीं था, इसलिए गांव के सभी लोग तैरना जानते हैं। पांचवीं कक्षा के बाद नदी को तैर कर स्कूल जाना होता था। कलम, फाउण्टेन पेन यह सब बाद में आया। हम शुरू में लकडी की पाटी पर लिखते थे छठे दर्जे से अंग्रेजी पढ़ाई जाती थी। मैं जहां पर था, वहां छत्तीसगढ़ था और मध्य प्रदेश का सीमान्त है। मेरा गांव छत्तीसगढ़ सीमा में है। मेरी माँ भोजपुर की और पिता जी बघेल के थे। उदय प्रकाश शुरुआती कई नौकरियों के बाद लंबे अरसे से लेखन की स्वायत्तशासी दुनिया से जुडे हैं।

कार्यक्षेत्र

पिछले दो दशकों में प्रकाशित उदय प्रकाश की कहानियों ने कथा साहित्य के परंपरागत पाठ को अपने आख्यान और कल्पनात्मक विन्यास से पूरी तरह बदल दिया है। नए युग के यथार्थ के निर्माण में उदय की कहानियों की जबर्दस्त भूमिका

है। वैविध्यपूर्ण जीवनानुभवों से लैस उदय की कहानियों पर कदाचित जितनी असहमतियाँ और विवाद दर्ज कि, गए उतनी किसी और की कहानियों पर नहीं। किन्तु सभी असहमतियों और विवादों को पीछे छोडते हुए उदय प्रकाश ने पश्चिमी मापदंड पर टिकी हिंदी आलोचना की कसौटियों के सामने सदैव एक चुनौती खड़ी की है। 'सुनो कारीगर', 'अबूतर कबूतर', 'रात में हारमोनियम' व 'एक भाषा हुआ करती है'- कविता संग्रहों और 'तिरिछ', 'दरियाई घोडा' और 'अंत में प्रार्थना', 'पालगोमरा का स्कूटर', 'दत्तात्रेय के दुख', 'पीली छतरी वाली लडकी', 'मैंगोसिल' व 'मोहनदास' जैसे कहानी संग्रहों के लेखक उदय प्रकाश ने कई लेखकों पर फिल्में बनाई हैं और बिज्जी की कहानियों पर धारावाहिक भी।

आत्मकथात्मक कृति

"मोहनदास" उदय प्रकाश की आत्मकथात्मक कृति है। बहुत कम लोग जानते हैं कि लगभग सभी भारतीय भाषाओं और विश्व की आधी दर्जन भाषाओं में अनूदित हो चुकी "मोहनदास" कहानी उदय प्रकाश ने तब लिखी थी, जब दिल्ली विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग में प्रोफेसर के पद के लिए उन्होंने इंटरव्यू दिया था और उन्हें वह नौकरी नहीं दी गयी थी। तब उदय प्रकाश को नौकरी इसलिए नहीं दी गयी थी क्योंकि चयन समिति के एक सदस्य को इस बात पर गहरा एतराज था कि उदय प्रकाश के पास पी.एच.डी. की डिग्री नहीं है। हालांकि तब तक उदय प्रकाश की कहानियों और कविताओं पर देश भर के विश्वविद्यालयों में आधे दर्जन से ज्यादा पी.एच.डी. और एक दर्जन से ज्यादा एम.फिल. की उपाधियां बांटी जा चुकी थीं। इसके अलावा कई विदेशी विश्वविद्यालयों के सिलेबस में उनकी कहानियां जगह पा चुकी थीं और वहां पढ़ायी जा रही थीं।

ब्लॉग

शब्दों के अनूठे शिल्प में बुनी कविताओं और उससे भी ज्यादा अनूठे गद्य शिल्प के लिए जाने जाने वाले उदय प्रकाश का ब्लॉग की दुनिया में पदार्पण एक सुखद घटना है।

सफर की शुरुआत

सन् 2005 में जब हिंदी में कोई ठीक से ब्लॉग का नाम भी नहीं जानता था, उदय प्रकाश ने अपने ब्लॉग की शुरुआत की, लेकिन यह सिलसिला ज्यादा लंबा नहीं

चला। लंबे अंतराल के बाद अब फिर उस सफर की शुरुआत हुई है। जिन्होंने 'पालगोमरा का स्कूटर', 'वॉरेन हेस्टिंग्ज का सांड़' और 'तिरिछ' सरीखी कहानियाँ पढ़ी हैं और जो उनके लेखन से वाकिफ हैं, उन्हें ब्लॉग पर उदय जी के लिखे का जरूर इंतजार होगा। उनके ब्लॉग पर आई प्रतिक्रियाएँ भी यह बताती हैं।

खुला मंच

इस ब्लॉग की शुरुआत के पीछे उदय प्रकाश का मकसद एक ऐसे मंच की तलाश थी, जहाँ किन्हीं नियमों और प्रतिबंधों के बगैर उन्मुक्त होकर अपनी कलम को अभिव्यक्त किया जा सके, जहाँ कोई सेंसरशिप न हो, जो कि प्रिंट या इलेक्ट्रॉनिक मीडिया में संभव नहीं है। उदय प्रकाश का मानना है कि एक सच्चा रचनाकार निर्बंध होकर अपने समय का सच लिखना चाहता है। पहले लेखक डायरियाँ लिखा करते थे। मुक्तिबोध की पुस्तक 'एक साहित्यिक की डायरी' बहुत प्रसिद्ध है। अब टेक्नोलॉजी ने हमें एक नया माध्यम दिया है। हिंदी में ब्लॉग की दुनिया का धीरे-धीरे विस्तार हो रहा है। हमें अपनी बात व्यापक पैमाने पर लोगों तक पहुँचाने के लिए इस माध्यम का इस्तेमाल करना चाहिए।

Blockquote&open-gif 'निजी स्वतंत्रता के आधुनिक विचार के लिए भी ब्लॉग की दुनिया में जगह है। ब्लॉग के माध्यम से कितने सार्थक काम और बहसें हो रही हैं, यह एक अलग मुद्दा है, लेकिन ब्लॉग लेखक को एक निजी किस्म की स्वतंत्रता देता है। उस स्पेस का इस्तेमाल लेखक अपने तरीके से निर्बंध होकर कर सकता है।'

–उदय प्रकाश

हिंदी में ब्लॉगिंग के भविष्य के बारे में उदय प्रकाश का कहना है कि यदि यह माध्यम और सस्ता होकर बड़े पैमाने पर लोगों तक पहुँचता है तो आने वाले कुछ वर्षों में ब्लॉगिंग के कुछ बड़े नतीजे भी सामने आ सकते हैं। यह ज्यादा सार्थक रूप में गंभीर सामाजिक और वैचारिक बहसों का मंच बन सकता है। जिस तेजी के साथ इंटरनेट और ब्लॉग का हिंदी में प्रसार हो रहा है, इस बात की पूरी संभावना हो सकती है।

फिलहाल आप मुक्तिबोध से लेकर 'असद जैदी' और 'कुँवर नारायण' तक की कविताएँ उदय प्रकाश के ब्लॉग पर पढ़ सकते हैं। मुक्तिबोध की एक शानदार अप्रकाशित कविता 'अगर तुम्हें सच्चाई का शौक है' का आनंद उदय प्रकाश के ब्लॉग पर उठाया जा सकता है।

मोहनदास

मोहनदास कहानी आजादी के लगभग साठ साल बाद के हालात का आकलन करती है। यह उस अंतिम व्यक्ति की कहानी है, जो बार-बार याद दिलाती है कि सत्ता केंद्रिक व्यवस्था में एक निर्बल, सत्ताहीन और गरीब मनुष्य की अस्मिता तक उससे छीनी जा सकती है। पर यह कहानी प्रतिकार की, प्रतिरोध की कहानी नहीं है। इस कहानी को उत्तर आधुनिक कहानी के रूप में भी देखा और सराहा गया है। 'वर्तिका फिल्म्स' के लिए 'मजहर कामरान' ने इस पर फिल्म बनाई है, जिसकी पटकथा, संवाद आदि ओम निश्चल ने लिखे हैं। हालाँकि फिल्म उस संवेदना को तो नहीं छू पाती, जिसे लक्ष्य कर कहानी लिखी गयी थी, लेकिन कहानी आज के हालात में एक मनुष्य की नियति का आख्यान तो रचती ही है।

कहानी

कहानी एक कठिन विधा है, भले ही उपन्यास से आकार में यह छोटी होती है और कविता की तुलना में यह गद्य का आश्रय लेती है। फिर भी कविता और उपन्यास के बीच की यह विधा बहुत आसान नहीं है। कहानी को सम्मान कभी मिला ही नहीं। शायद यह एक पुनर्विचार है हमारे समय के विद्वानों का जिन्होंने कहानी को वह प्रतिष्ठा दी है जिसकी वह हकदार रही है। चेखव ने तो कहानियाँ ही लिखीं, उपन्यास नहीं लिखे। प्रेमचंद अपनी कहानियों से ही लोकमान्य में जाने गए, गोदान आदि उपन्यासों से नहीं। निर्मल वर्मा की पहचान भी प्राथमिक तौर पर कहानी से ही बनी। तो इस समय के परिदृश्य कें केंद्र में कहानी है।

आलोचना

हिंदी का अभिजन यानी इलीट वर्ग कहानी के निहितार्थ में नहीं जाता, वह युक्तियों के बारे में बात करता है। चंद्रकांता संतति की लोकप्रियता की क्या वजह है। कोई आलोचना आप उस पर दिखा सकते हैं जिससे प्रेरित होकर पाठकों ने उसे पढ़ा हो। इस आख्यान की भी आखरि अपनी कलायुक्तियाँ हैं जिनका जादू पाठक पर असर करता है। हम देशी विदेशी आलोचकों पर नजर डालें तो पाते हैं, उनका अध्ययन बहुत व्यापक था। आलोचना का मकसद मूल्यों का संधान करना है। यह बड़ी साधना का काम है। भारत देश की संस्कृति-सभ्यता में एक

से एक बड़े कथाकार मौजूद हैं। पर हिंदी के बौद्धिक वर्ग के पास उस तैयारी का अभाव है, जो किसी भी रचना के मूल्याँकन में प्रवृत्त होने की प्राथमिक योग्यता है।

मूलतः कवि

मैं मूलतः कवि ही हूँ। इसको मैं भी जानता हूँ और बाकी लोग भी जानते हैं। मैं तो अक्सर मजाक में कहा करता हूँ कि मैं एक ऐसा कुम्हार हूँ जिसने् धोखे से कभी एक कमीज सिल दी और अब उसे सब दर्जी कह रहे हैं। सच यह है कि मैं कुम्हार ही हूँ।

प्रकाशित कृतियाँ

कविता संग्रह

सुनो कारीगर
अबूतर कबूतर
रात में हारमोनियम
एक भाषा हुआ करती है
कवि ने कहा

अनुवाद

इंदिरा गांधी की आखरी लड़ाई
कला अनुभव
लाल घास पर नीले घोड़े
रोम्यां रोलां का भारत
कथा साहित्य
दरियाई घोड़ा
तिरिछ
दत्तात्रेय के दुख
और अंत में प्रार्थना
पालगोमरा का स्कूटर
अरेबा

परेबा
मोहन दास
मैंगोसिल
पीली छतरी वाली लड़की

निबंध और आलोचना संग्रह

नयी सदी का पंचतंत्र
ईश्वर की आंख
कृतियों का मंचन
तिरिछ
लाल घास पर नीले घोड़े (अनुवाद)
वॉरेन हेस्टिंग्स का सान्ड पर नाटक
और अंत में प्रार्थना
अन्य भाषाओं में अनुवाद

उपरोक्त के अतिरिक्त इतालो कॉल्विनो, नेरूदा, येहुदा अमिचाई, फर्नांदो पसोवा, कवाफी, लोर्का, ताद्युश रोजेविच, जेग्जेव्येस्की, अलेक्सांद्र ब्लॉक आदि रचनाकारों के अनुवाद

सम्मान

1. 1980 में अपनी कविता 'तिब्बत' के लिए 'भारत भूषण अग्रवाल पुरस्कार' से सम्मानित, 'ओम प्रकाश सम्मान', 'श्रीकांत वर्मा पुरस्कार', 'मुक्तिबोध सम्मान', 'साहित्यकार सम्मान' प्राप्त कर चुके हैं।
2. 2004 में हॉलैंड के प्रख्यात अंतरराष्ट्रीय कविता उत्सव में वे भारतीय कवि के रूप में हिस्सा ले चुके हैं।
3. 2010 में 'कहानी मोहन दास' के लिये 'साहित्य अकादमी पुरस्कार'।

भारत भूषण अग्रवाल पुरस्कार

1. ओम प्रकाश सम्मान
2. श्रीकांत वर्मा पुरस्कार
3. मुक्तिबोध सम्मान
4. साहित्यकार सम्मान
5. द्विजदेव सम्मान

6. वनमाली सम्मान
7. पहल सम्मान
8. कृष्णबलदेव वैद सम्मान
9. महाराष्ट्र फाउंडेशन पुरस्कार, 'तिरिछ अणि इतर कथा' अनु. जयप्रकाश सावंत
10. 2010 का साहित्य अकादमी पुरस्कार, ('मोहन दास' के लिये)

उदय प्रकाश के कथन

मैं मूलत: कवि हूं। मैंने बहुत सारी कविताएं लिखीं और चित्र भी बनाए हैं। मैंने कॉलेज समय में एक कहानी लिखी थी जो बहुत लोकप्रिय हुई। मैं समझता हूं कि कहानी के पाठक अधिक होते हैं और वह ज्यादा लोगों तक पहुंचती है। उसे लोकप्रियता अधिक मिलती है। मैं लगभग इसी तरह का एक कुम्हार हूं जिसने् कमीज सिल दी, तो लोग उसे दर्जी समझने लगे। लोग फिर सुराही लेने उसके पास नहीं जाएंगे, जबकि कुम्हार जानता है कि मिट्टी का काम वह ज्यादा अच्छे तरीके से कर सकता है और उसमें ही ज्यादा आनंद मिलता है। मेरे साथ यही है कि कवि होते हुए भी कहानी लिखकर समाज की सेवा कर रहा हूं। वरिष्ठ कवि केदारनाथ सिंह ने एक बार कहा भी है कि मेरी कहानियां दरअसल मेरी कविताओं का ही विस्तार हैं। कहानियां लिखते हुए मुझे भी नहीं लगता कि मैं कहानियां लिख रहा हूं, बल्कि जो काव्यात्मक संवेदना कविता में नहीं आ रही वह कहानियों में आ रही है। निर्मल वर्मा और से कई कहानीकारों के साथ भी लगभग यही रहा। उनकी कहानियां पढ़ते हुए सा लगता है जैसे कविताएं पढ़ रहे हैं। मैं कहानी लिखते हुए भी कवि हूं और कवि सदा कवि ही रहता है।

जर्मन लोगों की भारत में गहरी रुचि है। मेरे व्याख्यान विभिन्न विषयों पर थे, लेकिन इंडोलोजी मुख्य विषय रहा। वहां भारत के नगरीकरण को लेकर बडी जिज्ञासाएं हैं। अपने प्रवास के दौरान मुझे कई छोटे-बड़े 23 शहर-कस्बों और गांवों में व्याख्यान देने का मौका मिला। मैंने यहां अपनी कहानी 'और अंत में प्रार्थना' को अपनी तरह से पढ़ा तो लोगों ने सा अनुभव किया जैसे यह उनके अतीत की कहानी हो, क्योंकि वहां के लोग भी 1943-45 में सी ही बर्बरता से गुजरे हैं। कुछ संकेत वैश्विक होते हैं। मेरे कहानी संग्रह 'और अंत में प्रार्थना'

को अवार्ड मिला है। इसका जर्मनी में अनुवाद वहीं के 29-30 साल के युवा लेखक आन्द्रे पेई ने किया है।

जीवन में आप जितना डूबेंगे उतना ही अच्छा लिख पाएंगे और ज्यादा लोगों तक पहुंचेंगे। कोई चीज लिखना बिना जीवन जिए संभव नहीं है, क्योंकि इससे ही अनुभव-संसार बढ़ता है। अगर आप अपने समय के मनुष्य के संकट और उसके यथार्थ को व्यक्त करेंगे जिसमें हर कोई जी रहा है, तो वह साहित्य अवश्य ही लोकप्रिय होगा। अगर साहित्य किसी बाजार या एक सीमित वर्ग को ध्यान में रखकर लिखा जा रहा है, तो बात अलग है। अगर कोई बड़ा उद्देश्य सामने रखकर साहित्य लिखा जाएगा तो उसका सम्मान होगा।

'मोहनदास' अपने समय के प्रश्नों को कुरेदता है। मोहनदास एक सचमुच का पात्र है। वह आज भी है एक दलित व्यक्ति पूरी मेहनत के साथ पढ़-लिखकर मेरिट से आगे बढ़ता है, लेकिन हमारी लोकतांत्रिक स्थितियों में आज भी से व्यक्तियों के लिए कोई ठिकाना नहीं है। एक नकली मोहनदास नौकरी पा लेता है और असली मोहनदास दर-दर भटकने को मजबूर है। से ही मैंने हर कृति में समय के सच और विडंबनाओं के बीच जीवन जीने की मजबूरियों को उद्घाटित किया है।

'पीली छतरी वाली लड़की' का अनुवाद 29-30 वर्ष के एक युवा अमरीकन लेखक जीसोन ग्रूनबाम ने किया। इस अनुवाद के लिए उन्हें वर्ष 2005 का पेन यू.एस.ए. अनुवाद कोश सम्मान मिला। शिकागो में इस उपन्यास का लोकार्पण हुआ और इसे काफी लोकप्रियता मिली। छात्र तो हर जगह इसे पसन्द करते हैं, क्योंकि प्रेम तो वैश्विक है। जीसोन हाल ही भारत आए तो उन्होंने बताया कि वे मेरे कहानी संग्रह 'मेंगोसिल' का अनुवाद कर रहे हैं।

अंग्रेजी में हम देखते हैं कि जो कुछ भी नहीं है उसी भाषा में सब अवार्ड मिलते चले जाते हैं। इस बार एक अच्छी बात यह हुई कि साहित्य का तीसरा अवार्ड मेरी कृति 'और अंत में प्रार्थना' को मिला, जबकि इसमें अरविन्द अडिगा का अंग्रेजी उपन्यास भी था जिसे छठवां स्थान मिला। इससे हम कह सकते हैं कि चीनियों से तो हम काफी पीछे रहे लेकिन हिन्दी साहित्य ने अंग्रेजी को काफी पीछे छोड़ दिया है।

कहने वाले कह रहे हैं कि आने वाला समय हिन्दी भाषा को नष्ट और भ्रष्ट कर रहा है, तो सा कुछ नहीं है। हिन्दी भारत की ताकत रही है। हर परिवर्तन को आत्मसात करना उसे आता है और जो रखने योग्य नहीं है उसे बाहर करना

भी आता है। हिन्दी लगातार समृद्ध हो रही है। हिन्दी भारतीय भाषाओं, बोलियों और विश्व की भाषाओं से तमाम तरह के शब्द, व्यंजनाएं, मुहावरे और बहुत सारी चीजें ले रही है।

'मेंगोसिल' मेरे इर्द-गिर्द घटी एक सच्ची घटना पर आधारित है। एक सफाई कर्मचारी के परिवार में 45 साल की उम्र में पहली संतान पैदा हुई तो बहुत खुशी हुई, लेकिन कुछ समय बाद एक वज्रपात सा हुआ कि बच्चे का सिर असंतुलित रूप से बड़ा हो रहा है। बताया गया कि वह जीवित नहीं रहेगा। ज्यों-ज्यों बच्चा बड़ा होता गया तो घर की चिंताएं बढ़ती गईं, लेकिन उसका दिमाग बहुत तेज था। वह जगत् की सब चीजों को समझता था। घर के लोगों की उपेक्षा के बावजूद उसकी मां जीवन के सारे सुख उसके लिए जुटाने में लगी थी। इस बीच घर में ध्यान हटाने के लिए नए बच्चे के जन्म लेने की घटना होती है। यह कथा विसंगतियों पर बुनी गई है जिसमें संवेदना को विशेष रूप से उभारा गया है।

1. पन्ने की प्रगति अवस्था,
2. आधार,
3. प्रारम्भिक,
4. माध्यमिक,
5. पूर्णता,
6. शोध।

टीका टिप्पणी और संदर्भ

1. उदयप्रकाश (हिंदी)।। अभिगमन तिथि:– 1 अक्टूबर, 2011।
2. मैं कुम्हार ही हूँ, दर्जी नहीं–उदय प्रकाश (हिंदी)।। अभिगमन तिथि:– 1 अक्टूबर, 2011।
3. उदय प्रकाश (हिंदी)।। अभिगमन तिथि– 1 अक्टूबर, 2011।
4. उदय प्रकाश (हिंदी)।। अभिगमन तिथि– 1 अक्टूबर, 2011।
5. प्रथम मंचन - राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय के प्रसन्ना के निर्देशन में।
6. प्रथम मंचन - प्रसन्ना के निर्देशन में।
7. प्रथम मंचन - अरविन्द गौड़ के निर्देशन में, अस्मिता नाटय संस्था द्वारा किया गया। यह नाटक राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय के भारत रंग महोत्सव व इन्डिया हैबिटैट सेन्टर में भी

15

रामदरश मिश्र

डॉ. रामदरश मिश्र हिन्दी के प्रतिष्ठित साहित्यकार हैं। ये जितने समर्थ कवि हैं उतने ही समर्थ उपन्यासकार और कहानीकार भी। इनकी लंबी साहित्य-यात्रा समय के कई मोड़ों से गुजरी है और नित्य नूतनता की छवि को प्राप्त होती गई है। ये किसी वाद के कृत्रिम दबाव में नहीं आये बल्कि उन्होंने अपनी वस्तु और शिल्प दोनों को सहज ही परिवर्तित होने दिया। अपने परिवेशगत अनुभवों एवं सोच को सृजन में उतारते हुए, उन्होंने गाँव की मिट्टी, सादगी और मूल्यधर्मिता को अपनी रचनाओं में व्याप्त होने दिया जो उनके व्यक्तित्त्व की पहचान भी है। गीत, नई कविता, छोटी कविता, लंबी कविता यानी कि कविता की कई शैलियों में उनकी सर्जनात्मक प्रतिभा ने अपनी प्रभावशाली अभिव्यक्ति के साथ-साथ गजल में भी उन्होंने अपनी सार्थक उपस्थिति रेखांकित की। इसके अतिरक्त उपन्यास, कहानी, संस्मरण, यात्रावृत्तांत, डायरी, निबंध आदि सभी विधाओं में उनका साहित्यिक योगदान बहुमूल्य है।

प्रारंभिक जीवन

डॉ. रामदरश मिश्र का जन्म हिन्दी तिथिनुसार श्रावण पूर्णिमा गुरुवार को गोरखपुर जिले के कछार अंचल के गाँव डुमरी में हुआ था। इनके पिता का नाम रामचन्द्र मिश्र और माता का नाम कँवलपाती मिश्र है। ये तीन भाई हैं स्व. राम अवध मिश्र, रामनवल मिश्र तथा ये स्वयं, जिनमें ये सबसे छोटे हैं। उनसे छोटी

एक बहन है कमला। मिश्र जी की प्रारंभिक शिक्षा मिडिल स्कूल तक गाँव के पास के एक स्कूल में हुई। फिर उन्होंने ढरसी गाँव स्थित 'राष्ट्रभाषा विद्यालय' से विशेष योग्यता बरहज से 'विशारद' और साहित्यरत्न की परीक्षाएँ पास कीं। 1945 में ये वाराणसी चले गये और वहाँ एक प्राइवेट स्कूल में साल भर मैट्रिक की पढ़ाई की। मैट्रिक पास करने के पश्चात ये काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से जुड़ गये और वहीं से इंटरमीडिएट, हिन्दी में स्नातक एवं स्नातकोत्तर तथा डॉक्टरेट किया। सन् 1956 में सयाजीराव गायकवाड़ विश्वविद्यालय, बड़ौदा में प्राध्यापक के रूप में उनकी नियुक्ति हुई। सन् 1958 में ये गुजरात विश्वविद्यालय से सम्बद्ध हो गये और आठ वर्ष तक गुजरात में रहने के पश्चात 1964 में दिल्ली विश्वविद्यालय में आ गये। वहाँ से 197 वें में प्रोफेसर के रूप में सेवामुक्त हुए।

साहित्यसेवा

रामदरश मिश्र हिन्दी साहित्य संसार के बहुआयामी रचनाकार हैं। उन्होंने गद्य एवं पद्य की लगभग सभी विधाओं में सृजनशीलता का परिचय दिया है और अनूठी रचनाएँ समाज को दी हैं। चार बड़े और आठ लघु उपन्यासों में मिश्र जी ने गाँव और शहर की जिन्दगी के संश्लिष्ट और सघन यथार्थ की गहरी पहचान की है। मिश्र जी की साहित्यिक प्रतिभा बहुआयामी है। उन्होंने कविता, कहानी, उपन्यास, आलोचना और निबंध जैसी प्रमुख विधाओं में तो लिखा ही है, आत्मकथा- सहचर है समय, यात्रा वृत्त तथा संस्मरण भी लिखे हैं। यात्राओं के अनुभव तना हुआ इन्द्रधनुष, भोर का सपना तथा पड़ोस की खुशबू में अभिव्यक्त हुए हैं। उन्होंने अपनी संस्मरण पुस्तक स्मृतियों के छन्द में उन अनेक वरिष्ठ लेखकों, गुरुओं और मित्रों के संस्मरण दिये हैं जिनसे उन्हें अपनी जीवन-यात्रा तथा साहित्य-यात्रा में काफी कुछ प्राप्त हुआ है। ये रचना-कर्म के साथ-साथ आलोचना कर्म से भी जुड़े रहे हैं। उन्होंने आलोचना, कविता और कथा के विकास और उनके महत्वपूर्ण पड़ावों की बहुत गहरी और साफ पहचान की है। 'हिन्दी उपन्यास–एक अंतयात्रा, 'हिन्दी कहानी–अंतरंग पहचान', 'हिन्दी कविता–आधुनिक आयाम', 'छायावाद का रचनालोक' उनकी महत्त्वपूर्ण समीक्षा-पुस्तकें हैं।

मिश्र जी ने अपनी सृजन-यात्रा कविता से प्रारंभ की थी और आज तक ये उसमें शिद्दत से जी रहे हैं। उनका पहला काव्य संग्रह 'पथ के गीत' 1951 में प्रकाशित हुआ था। तब से आज तक उनके नौ कविता संग्रह आ चुके हैं। ये

हैं – ''बैरंग-बेनाम चिट्ठियाँ', 'पक गयी है धूप', 'कंधे पर सूरज', 'दिन एक नदी बन गया', 'जुलूस कहां जा रहा है', 'आग कुछ नहीं बोलती', 'बारिश में भीगते बच्चे और 'हंसी ओठ पर आँखें नम हैं', (गजल संग्रह)- 'ऐसे में जब कभी', नवीनतम काव्य संग्रह प्रेस में है। रामदरश मिश्र ने समय-समय पर ललित निबंध भी लिखे हैं, जो 'कितने बजे हैं? तथा 'बबूल' और 'कैक्टस' में संगृहीत हैं। इन निबंध ने अपनी वस्तुगत मूल्यत्ता तथा भाषा शैलीगत सहजता से लेखकों और पाठकों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किया है। मिश्र जी ने देशी यात्राओं के अतिरिक्त नेपाल, चीन, उत्तरी दक्षिणी कोरिया, मास्को तथा इंग्लैंड की यात्राएं की हैं।

रामदरश मिश्र के साहित्य पर समीक्षा पुस्तकें

1. उपन्यासकार रामदरश मिश्र सं. डॉ. वेद प्रकाश अमिताभ तथा डॉ. प्रेम कुमार, वाणी प्रकाशन, दिल्ली (1982)
2. कथाकार रामदरश मिश्र ले. डॉ. सूर्यदीन यादव, इंद्रप्रस्थ प्रकाशन, दिल्ली (1987)
3. रचनाकार रामदरश मिश्र सं. डॉ. नित्यानंद तिवारी तथा डॉ. ज्ञानचंद गुप्त, राधा पब्लिकेशन, दिल्ली (1990)
4. रामदरश मिश्र की सृजन यात्रा ले. डॉ. महावीर सिंह चौहान, वाणी प्रकाशन, दिल्ली (1991)
5. कवि रामदरश मिश्र स. डॉ. महावीरसिंह चौहान तथा डॉ. नवनीत गोस्वामी, संस्कृति प्रकाशन अहमदाबाद (1991)
6. रामदरश मिश्रः व्यक्तित्त्व एवं कृतित्त्व ले. डॉ फूलबदन यादव, राधा प्रकाशन, दिल्ली (1992)
7. मूल्य और मूल्य संक्रमण (रामदरश मिश्र के उपन्यासों के संदर्भ में ले. डॉ. विनीता राय, अनिल प्रकाशन इलाहाबाद (1999)
8. रामदरश मिश्र– व्यक्ति और अभिव्यक्ति स. डॉ. स्मिता मिश्र तथा डॉ जगन सिंह वाणी प्रकाशन, दिल्ली (1999)
9. रामदरश मिश्र– रचना समय ले. डॉ. वेद प्रकाश अमिताभ, भारत पुस्तक भंडार, दिल्ली (1999)
10. रामदरश मिश्र की उपन्यास यात्रा ले. डॉ. प्रभुलाल डी. वैश्य, डॉ. गुंजनशाह, शाह प्रकाशन अहमदाबाद (2001)

11. रामदरश मिश्र के उपन्यास– चेतना के स्वर डॉ. गुंजन शाह, साहित्य भारती, दिल्ली (2002)
12. रामदरश मिश्र के उपन्यासों में समाज-जीवन डॉ. प्रकाश चिर्कुडेकर, नमन प्रकाशन, दिल्ली (2002)
13. रामदरश मिश्र की कहानियों में यथार्थ चेतना और मूल्य बोध डॉ. राधेश्याम सारस्वत अम्बा जी, गुजरात (2002)
14. रामदरश मिश्र के उपन्यासों में ग्राम चेतना जल टूटता हुआ' के संदर्भ में) डॉ. ममता शर्मा राष्ट्रीय ग्रंथ प्रकाशन गांधी नगर (2002)
15. रामदरश मिश्र– एक अंतर्यात्र डॉ. प्रकाश मनु, वाणी प्रकाशन दिल्ली (2004)
16. रामदरश मिश्र के उपन्यासों की वैचारिक पृष्ठभूमि डॉ. सीमा वैश्य, सत्यम पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली (2004)
17. रामदरश मिश्र की कविता– सृजन के रंग डॉ. सूर्यदीन यादव, शांति पुस्तक भंडार, दिल्ली (2005)
18. रामदरश मिश्र के उपन्यासों में गृह- परिवार डॉ. यशवंत गोस्वामी, नया साहित्य केंद्र, दिल्ली (2005)
19. रामदरश मिश्र के उपन्यासों में नारी डॉ. मनहर गोस्वामी, नया साहित्य केंद्र, दिल्ली (2005)
20. रामदरश मिश्र की कहानियों में पारिवारिक सम्बन्धों का स्वरूप डॉ. अमिता, स्वराज प्रकाशन दिल्ली (2006)
21. रामदरश मिश्र के उपन्यासों में आंचलिकता डॉ. श्रीधर प्रदीप, अमर प्रकाशन मथुरा, (2004)
22. रामदरश मिश्र के उपन्यासों में ग्रामीण परिवेश अनिल काले, चिंतन प्रकाशन कानपुर (2007)
23. रामदरश मिश्र के साहित्य में ग्राम्य जीवन डॉ. वीरचन्द्र जी चौहान, चिंतन प्रकाशन कानपुर (2006)

योगदान

प्राय: सभी भारतीय भाषाओं में मिश्र जी की कविताओं और कहानियों के अनुवाद हुए हैं। उनका एक उपन्यास 'अपने लोग' गुजराती में अनूदित है। उनकी रचनाओं विभिन्न स्तरों के पाठ्यक्रमों में पढ़ाई जा रही हैं और देश के अनेक

विश्वविद्यालयों में उनके साहित्य पर अनेक शोध कार्य हो चुके हैं और लगातार हो रहे हैं। मिश्र जी देश की अनेक साहित्यिक और अकादमिक संस्थाओं द्वारा सम्मानित किये जा चुके हैं। 21 अप्रैल 2007 को पटना में प्रतिष्ठित साहित्यिक पत्रिका 'नई धारा' द्वारा तृतीय उदयराज सिंह स्मारक व्याख्यान तथा साहित्यकार सम्मान समारोह में प्रसिद्ध साहित्यकार उदयराज सिंह की धर्मपत्नी श्रीमती शीला सिन्हा ने डॉ. रामदरश मिश्र को 'उदयराज सिंह स्मृति सम्मान' से सम्मानित किया। उनकी अनेक कृतियाँ पुरस्कृत हुई हैं। ये अनेक साहित्यिक, अकादमिक और सामाजिक संस्थाओं के अध्यक्ष रह चुके हैं। कई लघु पत्रिकाओं के सलाहकार संपादक हैं।

16

नागार्जुन

नागार्जुन हिन्दी और मैथिली के अप्रतिम लेखक और कवि थे। अनेक भाषाओं के ज्ञाता तथा प्रगतिशील विचारधारा के साहित्यकार नागार्जुन ने हिन्दी के अतिरिक्त मैथिली संस्कृत एवं बांग्ला में मौलिक रचनाएँ भी कीं तथा संस्कृत, मैथिली एवं बांग्ला से अनुवाद कार्य भी किया। साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित नागार्जुन ने मैथिली में यात्री उपनाम से लिखा तथा यह उपनाम उनके मूल नाम वैद्यनाथ मिश्र के साथ मिलकर एकमेक हो गया।

जीवन-परिचय

नागार्जुन का जन्म 1911 ई. की ज्येष्ठ पूर्णिमा, को वर्तमान मधुबनी जिले के सतलखा में हुआ था। यह उन का ननिहाल था। उनका पैतृक गाँव वर्तमान दरभंगा जिले का तरौनी था। इनके पिता का नाम गोकुल मिश्र और माता का नाम उमा देवी था। नागार्जुन के बचपन का नाम 'ठक्कन मिसर' था। गोकुल मिश्र और उमा देवी को लगातार चार संतानों हुईं और असमय ही वे सब चल बसीं। संतान न जीने के कारण गोकुल मिश्र अति निराशापूर्ण जीवन में रह रहे थे। अशिक्षित ब्राह्मण गोकुल मिश्र ईश्वर के प्रति आस्थावान तो स्वाभाविक रूप से थे ही पर उन दिनों अपने आराध्य देव शंकर भगवान की पूजा ज्यादा ही करने लगे थे। वैद्यनाथ धाम (देवघर) जाकर बाबा वैद्यनाथ की उन्होंने यथाशक्ति उपासना की और वहाँ से लौटने के बाद घर में पूजा-पाठ में भी समय लगाने

लगे। 'फिर जो पाँचवीं संतान हुई तो मन में यह आशंका भी पनपी कि चार संतानों की तरह यह भी कुछ समय में ठगकर चल बसेगा। अत: इसे 'ठक्कन' कहा जाने लगा। काफी दिनों के बाद इस ठक्कन का नामकरण हुआ और बाबा वैद्यनाथ की कृपा-प्रसाद मानकर इस बालक का नाम वैद्यनाथ मिश्र रखा गया।'

गोकुल मिश्र की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं रह गयी थी। वे काम-धाम कुछ करते नहीं थे। सारी जमीन बटाई पर दे रखी थी और जब उपज कम हो जाने से कठिनाइयाँ उत्पन्न हुईं तो उन्हें जमीन बेचने का चस्का लग गया। जमीन बेचकर कई प्रकार की गलत आदतें पाल रखी थीं। जीवन के अंतिम समय में गोकुल मिश्र अपने उत्तराधिकारी (वैद्यनाथ मिश्र) के लिए मात्र तीन कट्ठा उपजाऊ भूमि और प्राय: उतनी ही वास-भूमि छोड़ गये, वह भी सूद-भरना लगाकर। बहुत बाद में नागार्जुन दंपति ने उसे छुड़ाया।

ऐसी पारिवारिक स्थिति में बालक वैद्यनाथ मिश्र पलने-बढ़ने लगे। छह वर्ष की आयु में ही उनकी माता का देहांत हो गया। इनके पिता (गोकुल मिश्र) अपने एक-मात्र मातृहीन पुत्र को कंधे पर बैठाकर अपने संबंधियों के यहाँ, इस गाँव--उस गाँव आया-जाया करते थे। इस प्रकार बचपन में ही इन्हें पिता की लाचारी के कारण घूमने की आदत पड़ गयी और बड़े होकर यह घूमना उनके जीवन का स्वाभाविक अंग बन गया। 'घुमक्कड़ी का अणु जो बाल्यकाल में ही शरीर के अंदर प्रवेश पा गया, वह रचना-धर्म की तरह ही विकसित और पुष्ट होता गया।'

वैद्यनाथ मिश्र की आरंभिक शिक्षा उक्त पारिवारिक स्थिति में लघु सिद्धांत कौमुदी और अमरकोश के सहारे आरंभ हुई। उस जमाने में मिथिलांचल के धनी अपने यहां निर्धन मेधावी छात्रों को प्रश्रय दिया करते थे। इस उम्र में बालक वैद्यनाथ ने मिथिलांचल के कई गांवों को देख लिया। बाद में विधिवत संस्कृत की पढ़ाई बनारस जाकर शुरू की। वहीं उन पर आर्य समाज का प्रभाव पड़ा और फिर बौद्ध दर्शन की ओर झुकाव हुआ। उन दिनों राजनीति में सुभाष चंद्र बोस उनके प्रिय थे। बौद्ध के रूप में उन्होंने राहुल सांकृत्यायन को अग्रज माना। बनारस से निकलकर कोलकाता और फिर दक्षिण भारत घूमते हुए लंका के विख्यात 'विद्यालंकार परिवेण' में जाकर बौद्ध धर्म की दीक्षा ली। राहुल और नागार्जुन 'गुरु भाई' हैं। लंका की उस विख्यात बौद्धिक शिक्षण संस्था में रहते हुए मात्र बौद्ध दर्शन का अध्ययन ही नहीं हुआ बल्कि विश्व राजनीति की ओर रुचि जगी और भारत में चल रहे स्वतंत्रता आंदोलन की ओर सजग नजर भी बनी रही। 1938

ई. के मध्य में वे लंका से वापस लौट आये। फिर आरंभ हुआ उनका घुमक्कड़ जीवन। साहित्यिक रचनाओं के साथ-साथ नागार्जुन राजनीतिक आंदोलनों में भी प्रत्यक्षत: भाग लेते रहे। स्वामी सहजानंद से प्रभावित होकर उन्होंने बिहार के किसान आंदोलन में भाग लिया और मार खाने के अतिरिक्त जेल की सजा भी भुगती। चंपारण के किसान आंदोलन में भी उन्होंने भाग लिया। वस्तुत: वे रचनात्मक के साथ-साथ सक्रिय प्रतिरोध में विश्वास रखते थे। 1974 के अप्रैल में जेपी आंदोलन में भाग लेते हुए उन्होंने कहा था 'सत्ता प्रतिष्ठान की दुर्नीतियों के विरोध में एक जनयुद्ध चल रहा है, जिसमें मेरी हिस्सेदारी सिर्फ वाणी की ही नहीं, कर्म की हो, इसीलिए मैं आज अनशन पर हूँ, कल जेल भी जा सकता हूँ।' और सचमुच इस आंदोलन के सिलसिले में आपात् स्थिति से पूर्व ही इन्हें गिरफ्तार कर लिया गया और फिर काफी समय जेल में रहना पड़ा।

1948 ई. में पहली बार नागार्जुन पर दमा का हमला हुआ और फिर कभी ठीक से इलाज न कराने के कारण आजीवन वे समय-समय पर इससे पीड़ित होते रहे। दो पुत्रियों एवं चार पुत्रों से भरे-पूरे परिवार वाले नागार्जुन कभी गार्हस्थ्य धर्म ठीक से नहीं निभा पाये और इस भरे-पूरे परिवार के पास अचल संपत्ति के रूप में विरासत में मिली वही तीन कट्ठा उपजाऊ तथा प्राय: उतनी ही वास-भूमि रह गयी।

लेखन-कार्य एवं प्रकाशन

नागार्जुन का असली नाम वैद्यनाथ मिश्र था परंतु हिन्दी साहित्य में उन्होंने नागार्जुन तथा मैथिली में यात्री उपनाम से रचनाएँ कीं। काशी में रहते हुए उन्होंने 'वैदेह' उपनाम से भी कविताएँ लिखी थीं। सन् 1936 में सिंहल में 'विद्यालंकार परिवेण' में ही 'नागार्जुन' नाम ग्रहण किया। आरंभ में उनकी हिन्दी कविताएँ भी 'यात्री' के नाम से ही छपी थीं। वस्तुत: कुछ मित्रों के आग्रह पर 1941 ईस्वी के बाद उन्होंने हिन्दी में नागार्जुन के अलावा किसी नाम से न लिखने का निर्णय लिया था।

नागार्जुन की पहली प्रकाशित रचना एक मैथिली कविता थी जो 1929 ई. में लहेरियासराय, दरभंगा से प्रकाशित 'मिथिला' नामक पत्रिका में छपी थी। उनकी पहली हिन्दी रचना 'राम के प्रति' नामक कविता थी जो 1934 ई. में लाहौर से निकलने वाले साप्ताहिक 'विश्वबन्धु' में छपी थी।

नागार्जुन लगभग अड़सठ वर्ष (सन् 1929 से 1997) तक रचनाकर्म से जुड़े रहे। कविता, उपन्यास, कहानी, संस्मरण, यात्रा-वृत्तांत, निबन्ध, बाल-साहित्य -- सभी विधाओं में उन्होंने कलम चलायी। मैथिली एवं संस्कृत के अतिरिक्त बांग्ला से भी वे जुड़े रहे। बांग्ला भाषा और साहित्य से नागार्जुन का लगाव शुरू से ही रहा। काशी में रहते हुए उन्होंने अपने छात्र जीवन में बांग्ला साहित्य को मूल बांग्ला में पढ़ना शुरू किया। मौलिक रुप से बांग्ला लिखना फरवरी 1978 ई. में शुरू किया और सितंबर 1979 ई. तक लगभग 50 कविताएँ लिखी जा चुकी थीं। कुछ रचनाएँ बँगला की पत्र-पत्रिकाओं में भी छपीं। कुछ हिंदी की लघु पत्रिकाओं में लिप्यंतरण और अनुवाद सहित प्रकाशित हुई। मौलिक रचना के अतिरिक्त उन्होंने संस्कृत, मैथिली और बांग्ला से अनुवाद कार्य भी किया। कालिदास उनके सर्वाधिक प्रिय कवि थे और 'मेघदूत' प्रिय पुस्तक। मेघदूत का मुक्तछंद में अनुवाद उन्होंने 1953 ई. में किया था। जयदेव के 'गीत गोविंद' का भावानुवाद वे 1948 ई. में ही कर चुके थे। वस्तुतः 1944 और 1954 ई. के बीच नागार्जुन ने अनुवाद का काफी काम किया। बांग्ला उपन्यासकार शरतचंद्र के कई उपन्यासों और कथाओं का हिंदी अनुवाद छपा भी। कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी के उपन्यास 'पृथ्वीवल्लभ' का गुजराती से हिंदी में अनुवाद 1945 ई. में किया था। 1965 ई. में उन्होंने विद्यापति के सौ गीतों का भावानुवाद किया था। बाद में विद्यापति के और गीतों का भी उन्होंने अनुवाद किया। इसके अतिरिक्त उन्होंने विद्यापति की 'पुरुष-परीक्षा' (संस्कृत) की तेरह कहानियों का भी भावानुवाद किया था जो 'विद्यापति की कहानियाँ' नाम से 1964 ई. में प्रकाशित हुई थी।

प्रकाशित कृतियाँ

कविता-संग्रह-

युगधारा -
सतरंगे पंखों वाली -1959
प्यासी पथराई आँखें -1962
तालाब की मछलियाँ -1974
तुमने कहा था -1980
खिचड़ी विप्लव देखा हमने -1980

हजार-हजार बाँहों वाली -1981
पुरानी जूतियों का कोरस -1983
रत्नगर्भ -1984
ऐसे भी हम क्या! ऐसे भी तुम क्या!! -1985
आखिर ऐसा क्या कह दिया मैंने -1986
इस गुब्बारे की छाया में -1990
भूल जाओ पुराने सपने -1994
अपने खेत में -1997

प्रबंध काव्य-

भस्मांकुर -1970
भूमिजा
उपन्यास-
रतिनाथ की चाची -1948
बलचनमा -1952
नयी पौध -1953
बाबा बटेसरनाथ -1954
वरुण के बेटे -1956-57
दुखमोचन -1956-57
कुंभीपाक -1960 (1972 में 'चम्पा' नाम से भी प्रकाशित)
हीरक जयन्ती -1962 (1979 में 'अभिनन्दन' नाम से भी प्रकाशित)
उग्रतारा -1963
जमनिया का बाबा -1968 (इसी वर्ष 'इमरतिया' नाम से भी प्रकाशित)
गरीबदास -1990 (1979 में लिखित)

संस्मरण-

एक व्यक्ति: एक युग -1963

कहानी संग्रह-

आसमान में चन्दा तैरे -1982

आलेख संग्रह-

अन्नहीनम् क्रियाहीनम् -1983

बम्भोलेनाथ -1987

बाल साहित्य-

कथा मंजरी भाग-1 -1958

कथा मंजरी भाग-2 -

मर्यादा पुरुषोत्तम राम -1955 (बाद में 'भगवान राम' के नाम से तथा अब 'मर्यादा पुरुषोत्तम' के नाम से प्रकाशित)

विद्यापति की कहानियाँ -1964

मैथिली रचनाएँ-

चित्र (कविता-संग्रह) -1949

पत्रहीन नग्न गाछ (?) -1967

पका है यह कटहल (?) -1995 (शचित्र' एवं 'पत्रहीन नग्न गाछ' की सभी कविताओं के साथ 52 असंकलित मैथिली कविताएँ हिंदी पद्यानुवाद सहित)

पारो (उपन्यास) -1946

नवतुरिया (?) -1954

बांग्ला रचनाएँ-

मैं मिलिट्री का बूढ़ा घोड़ा -1997 (देवनागरी लिप्यंतर के साथ हिंदी पद्यानुवाद)

संचयन एवं समग्र-

नागार्जुन रचना संचयन - सं0-राजेश जोशी (साहित्य अकादेमी, नयी दिल्ली से)

नागार्जुन–चुनी हुई रचनाएँ -तीन खण्ड (वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली से)

नागार्जुन रचनावली -2003, सात खण्डों में, सं0 शोभाकांत (राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली से)

नागार्जुन पर केंद्रित विशिष्ट साहित्य

नागार्जुन का रचना-संसार - विजय बहादुर सिंह (प्रथम संस्करण-1982, संभावना प्रकाशन, हापुड़ से, पुनर्प्रकाशन-2009, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली से)

नागार्जुन की कविता - अजय तिवारी, (संशोधित संस्करण-2005) वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली से)

नागार्जुन का कवि-कर्म - खगेंद्र ठाकुर (प्रथम संस्करण-2013, प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, नयी दिल्ली से)

जनकवि हूँ मैं - संपादक- रामकुमार कृषक (प्रथम संस्करण-2012 'अलाव' के नागार्जुन जन्मशती विशेषांक का संशोधित पुस्तकीय रूप', इंद्रप्रस्थ प्रकाशन, नयी दिल्ली से)

नागार्जुन-अंतरंग और सृजन-कर्म - संपादक- मुरली मनोहर प्रसाद सिंह, चंचल चौहान 'नया पथ' के नागार्जुन जन्मशती विशेषांक का संशोधित पुस्तकीय रूप', (लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद से)

आलोचना सहस्राब्दी अंक 43 (अक्टूबर-दिसंबर 2011), संपादक- अरुण कमल

तुमि चिर सारथि यात्री नागार्जुन आख्यान तारानंद वियोगी (मैथिली से अनुवाद-केदार कानन, अविनाश) (पहले 'पहल' पुस्तिका के रूप में फिर अंतिका प्रकाशन, दिल्ली से)

पुरस्कार

साहित्य अकादमी पुरस्कार -1969 (मैथिली में, 'पत्र हीन नग्न गाछ' के लिए)

भारत भारती सम्मान (उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, लखनऊ द्वारा)

मैथिलीशरण गुप्त सम्मान (मध्य प्रदेश सरकार द्वारा)

राजेन्द्र शिखर सम्मान -1994 (बिहार सरकार द्वारा)

साहित्य अकादमी की सर्वोच्च फेलोशिप से सम्मानित

राहुल सांकृत्यायन सम्मान पश्चिम बंगाल सरकार से

समालोचना

नागार्जुन के काव्य में अब तक की पूरी भारतीय काव्य-परंपरा ही जीवंत रूप में उपस्थित देखी जा सकती है। उनका कवि-व्यक्तित्त्व कालिदास और

विद्यापति जैसे कई कालजयी कवियों के रचना-संसार के गहन अवगाहन, बौद्ध एवं मार्क्सवाद जैसे बहुजनोन्मुख दर्शन के व्यावहारिक अनुगमन तथा सबसे बढ़कर अपने समय और परिवेश की समस्याओं, चिन्ताओं एवं संघर्षों से प्रत्यक्ष जुड़ाव तथा लोकसंस्कृति एवं लोकहृदय की गहरी पहचान से निर्मित है। उनका 'यात्रीपन' भारतीय मानस एवं विषय-वस्तु को समग्र और सच्चे रूप में समझने का साधन रहा है। मैथिली, हिन्दी और संस्कृत के अलावा पालि, प्राकृत, बांग्ला, सिंहली, तिब्बती आदि अनेकानेक भाषाओं का ज्ञान भी उनके लिए इसी उद्देश्य में सहायक रहा है। उनका गतिशील, सक्रिय और प्रतिबद्ध सुदीर्घ जीवन उनके काव्य में जीवंत रूप से प्रतिध्वनित-प्रतिबिंबित है। नागार्जुन सही अर्थों में भारतीय मिट्टी से बने आधुनिकतम कवि हैं। उन्होंने आजादी के पहले और बाद में भी कई बड़े जनांदोलनों में भाग लिया था। 1939 से 1942 के बीच बिहार में किसानों के एक प्रदर्शन का नेतृत्व करने की वजह से जेल में रहे। आजादी के बाद लम्बे समय तक वो पत्रकारिता से भी जुड़े रहे। जन संघर्ष में अडिग आस्था, जनता से गहरा लगाव और एक न्यायपूर्ण समाज का सपना, ये तीन गुण नागार्जुन के व्यक्तित्त्व में ही नहीं, उनके साहित्य में भी घुले-मिले हैं।

निराला के बाद नागार्जुन अकेले ऐसे कवि हैं, जिन्होंने इतने छंद, इतने ढंग, इतनी शैलियाँ और इतने काव्य रूपों का इस्तेमाल किया है। पारंपरिक काव्य रूपों को नए कथ्य के साथ इस्तेमाल करने और नए काव्य कौशलों को संभव करनेवाले वे अद्वितीय कवि हैं। उनके कुछ काव्य शिल्पों में ताक-झाँक करना हमारे लिए मूल्यवान हो सकता है। उनकी अभिव्यक्ति का ढंग तिर्यक भी है, बेहद ठेठ और सीधा भी। अपनी तिर्यकता में वे जितने बेजोड़ हैं, अपनी वाग्मिता में वे उतने ही विलक्षण हैं। काव्य रूपों को इस्तेमाल करने में उनमें किसी प्रकार की कोई अंतर्बाधा नहीं है। उनकी कविता में एक प्रमुख शैली स्वगत में मुक्त बातचीत की शैली है। नागार्जुन की ही कविता से पद उधार लें तो कह सकते हैं-स्वागत शोक में बीज निहित हैं विश्व व्यथा के। भाषा पर बाबा का गजब अधिकार है। देसी बोली के ठेठ शब्दों से लेकर संस्कृतनिष्ठ शास्त्रीय पदावली तक उनकी भाषा के अनेकों स्तर हैं। उन्होंने तो हिन्दी के अलावा मैथिली, बांग्ला और संस्कृत में अलग से बहुत लिखा है। जैसा पहले भाव-बोध के संदर्भ में कहा गया, वैसे ही भाषा की दृष्टि से भी यह कहा जा सकता है कि बाबा की कविताओं में कबीर से लेकर धूमिल तक की पूरी हिन्दी काव्य-परंपरा एक साथ जीवंत है। बाबा ने छंद से भी परहेज नहीं किया, बल्कि उसका अपनी कविताओं

में क्रांतिकारी ढंग से इस्तेमाल करके दिखा दिया। बाबा की कविताओं की लोकप्रियता का एक आधार उनके द्वारा किया गया छंदों का सधा हुआ चमत्कारिक प्रयोग भी है।

समकालीन प्रमुख हिंदी साहित्यकार उदय प्रकाश के अनुसार 'यह जोर देकर कहने की जरूरत है कि बाबा नागार्जुन बीसवीं सदी की हिंदी कविता के सिर्फ 'भदेस' और मात्र विद्रोही मिजाज के कवि ही नहीं, वे हिंदी जाति के सबसे अद्वितीय मौलिक बौद्धिक कवि थे। वे सिर्फ 'एजिट पोएट' नहीं, पारंपरिक भारतीय काव्य परंपरा के विरल 'अभिजात' और 'एलीट पोएट' भी थे।' उदय प्रकाश ने बाबा नागार्जुन के व्यक्तित्त्व-निर्माण एवं कृतित्त्व की व्यापक महत्ता को एक साथ संकेतित करते हुए एक ही महावाक्य में लिखा है कि 'खुद ही विचार करिये, जिस कवि ने बौद्ध दर्शन और मार्क्सवाद का गहन अध्ययन किया हो, राहुल सांकृत्यायन और आनंद कौसल्यायन जैसी प्रचंड मेधाओं का साथी रहा हो, जिसने् प्राचीन भारतीय चिंतन परंपरा का ज्ञान पालि, प्राकृत, अपभ्रंश और संस्कृत जैसी भाषाओं में महारत हासिल करके प्राप्त किया हो, जिस कवि ने हिंदी, मैथिली, बंगला और संस्कृत में लगभग एक जैसा वाग्वैदग्ध्य अर्जित किया हो, अपनी मूल प्रज्ञा और संज्ञान में जो तुलसी और कबीर की महान संत परंपरा के निकटस्थ हो, जिस रचनाकार ने 'बलचनमा' और 'वरुण के बेटे' जैसे उपन्यासों के द्वारा हिंदी में आंचलिक उपन्यास लेखन की नींव रखी हो जिसके चलते हिंदी कथा साहित्य को रेणु जैसी ऐतिहासिक प्रतिभा प्राप्त हुई हो, जिस कवि ने अपने आक्रांत निजी जीवन ही नहीं बल्कि अपने समूचे दिक् और काल की, राष्ट्रीय-अंतरराष्ट्रीय घटनाक्रमों और व्यक्तित्त्व पर अपनी निर्भ्रांत कलम चलाई हो, (संस्कृत में) बीसवीं सदी के किसी आधुनिक राजनीतिक व्यक्तित्त्व (लेनिन) पर समूचा खण्डकाव्य रच डाला हो, जिसके हैंडलूम के सस्ते झोले में मेघदूतम् और 'एकॉनमिक पॉलिटिकल वीकली' एक साथ रखे मिलते हों, जिसकी अंग्रेजी भी किसी समकालीन हिंदी कवि या आलोचक से बेहतर ही रही हो, जिसने रजनी पाम दत्त, नेहरू, बर्तोल्त ब्रेख्ट, निराला, लूशुन से लेकर विनोबा, मोरारजी, जेपी, लोहिया, केन्याता, एलिजाबेथ, आइजन हावर आदि पर स्मरणीय और अत्यंत लोकप्रिय कविताएं लिखी हों -- ... बीसवीं सदी की हिंदी कविता का प्रतिनिधि बौद्धिक कवि वह है।..।'

टिप्पणियाँ

नागार्जुन की जन्म-तिथि संदेहास्पद है। वे स्वयं अपनी जन्मतिथि 1911 ई. की ज्येष्ठ पूर्णिमा को मानते थे और उनके पुत्र ने भी उनकी यही जन्म तिथि मानी है। परन्तु, कुछ अन्य स्रोतों में उनकी जन्मतिथि 30 जून 1911 ई. (शुक्रवार) मानी गयी है। ये दोनों तिथियाँ भिन्न-भिन्न हो जाती हैं। उनकी जन्म-तिथि को कुछ विद्वानों ने संदेहास्पद माना है। 1911 ई. की ज्येष्ठ पूर्णिमा को उनकी जन्म-तिथि मानने पर उनका जन्म 11 जून 1911 ई. (रविवार) को सिद्ध होता है।